चतुर्थ परिच्छेद

गोस्वामी जी का साहित्यिक अवदान

जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कवि करहीं॥

रामचरितमानस का महाकाव्यत्व—आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण (६/३१५ से ६/३२५ तक) में महाकाव्य के निम्नांकित लक्षण बतलाये हैं—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः॥
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा॥
शृंगार वीर शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः॥
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्॥
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तु निर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्॥
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह॥
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायां सूचनं भवेत्॥
सन्ध्या सूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्त वासराः।
प्रातर्मध्याह्न मृगयाशैलर्तु वन सागराः॥
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनि स्वर्गपुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयम मन्त्र पुत्रोदयादयः॥
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह।

कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ।

महाकाव्य का नायक धीरोदात्त होता है। दशरूपक में धीरोदात्त नायक के निम्नांकित लक्षण बतलाये गये हैं—

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ।। दशरूपक ३।६८

साहित्यदर्पणकार के मत से धीरोदात्त नायक के निम्नांकित लक्षण होते हैं—

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः ।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः ।। साहित्य दर्पण ३।३२

रामचरितमानस में महाकाव्य के उपर्युक्त सभी लक्षण पाये जाते हैं—

(१) रामचरितमानस का कथानक सुसंघटित तथा विख्यात है। उसका ऐतिहासिकत्व निर्विवाद है। राम की कथा पुराणों, संस्कृत के महाकाव्यों और नाटकों में ही नहीं; प्रत्युत प्राकृत तथा अपभ्रंश की रचनाओं में भी उपलब्ध होती है। वह इतिहासोद्भूत है। मानस के विशाल कथानक में विविध उपाख्यानों—शिव-पार्वती उपाख्यान; जय-विजय उपाख्यान; कश्यप-अदिति, मनु-शतरूपा तथा राजा प्रतापभानु का उपाख्यान—का समावेश हुआ है। अतः इसका कलेवर बढ़ गया है। कथा का मुख्य आधार वाल्मीकि रामायण है, जिसमें यद्यपि सप्त काण्ड हैं, तथापि प्रत्येक काण्ड के अन्तर्गत अनेक सर्गों में कथा का विस्तार पाया जाता है। इसी प्रकार रामचरित मानस में भी सप्तकाण्ड हैं और इसमें वाल्मीकि रामायण के लगभग ५०० सर्गों की कथा आ गयी है। मानस की सम्पूर्ण उपकथायें, रामकथा के विकास में सहायक सिद्ध होती हैं।

(२) मानस के नायक श्रीराम देवगुण सम्पन्न सद्वंशोद्भूत क्षत्रिय और ब्रह्म के अवतार हैं—

जगनिवास प्रभु प्रगटे, अखिल लोक बिश्राम ।

वे धीरोदात्त नायक हैं। वे महासत्त्ववान्, अतिगम्भीर, क्षमावान्, अविकत्थन, निगूढाहंकार एवं दृढ़व्रत हैं—

कोटि बिप्रबध लागहिं जाहू । आये सरन तजउँ नहिं ताहू ।।
सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ।।

वे शक्ति, शील और सौन्दर्य की गरिमा से युक्त हैं। गोस्वामी जी के राम में आदर्श नरत्व और नारायणत्व का मणिकांचन संयोग दृष्टिगोचर होता है।

(३) मानस में सभी रसों की अभिव्यक्ति हुई है, किन्तु मानस का प्रतिपाद्य भक्ति तत्त्व है; इसलिए मानस का मुख्य रस भक्तिरस है[1]—

अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी । जाचहिं भगति सकल सुखखानी ।।

× × ×

१. तुलसी काव्य मीमांसा—डॉ० उदयभानु सिंह—पृष्ठ ४२६

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहिं राम॥

भक्तिरस की व्याप्ति का सबसे पुष्ट प्रमाण यह है कि रामचरितमानस का कोई भी प्रकरण उसके प्रतिपादन से सर्वथा मुक्त नहीं है और उसकी प्रबन्ध-ध्वनि भी भक्ति-रस ही है। तुलसीदास का एक मात्र लक्ष्य अविरल हरि भक्ति का व्यवस्थापन है—

श्रीमद्रामचरित्र मानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये।
ते संसार पतंगघोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥

इति श्रीमद् रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने (अविरल हरिभक्ति सम्पादनो नाम; सप्तमः सोपानः समाप्तः।

गोस्वामी जी ने अन्य रसों को मानस-सर में विचरण करने वाले जलविहग कहा है और भक्तिरस को फल का रस बतलाया है। इससे भी यह सिद्ध हो जाता है कि रामचरितमानस का मुख्य रस भक्ति-रस ही है[1]—

नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा॥
भगति निरूपन विविध विधाना। छमा दया दम लता विताना॥
सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरि पद रति रस बेद बखाना॥

रामचरितमानस १।३७।५-७

(४) इसमें धर्मार्थकाममोक्ष आदि सभी पुरुषार्थों का प्रतिपादन किया गया है। चित्रकूट के आध्यात्मिक सम्मिलन, श्रीरामगीता, पुरवासियों को श्रीराम का उपदेश तथा ज्ञानदीपक आदि प्रसंगों में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शब्द-शक्ति के माध्यम से कर्म, धर्म और मोक्ष का प्रतिपादन किया गया है।

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥
× × ×
अर्थ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी॥

(५) मानस का आरम्भ निम्नांकित श्लोक से हुआ है—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ॥

इसमें मङ्गल मूर्ति विनायक की वन्दना की गयी है। पिंगल शास्त्र में कहा गया है कि जिस काव्य के आदि, मध्य और अन्त में मंगल का विधान होता है, उसके अध्ययन और प्रवचन से पाठक दीर्घायु होते हैं—

आदिमध्यावसानेषु, यस्य ग्रन्थस्य मङ्गलम्।
तत्पाठात्पाठनाद्वापि, दीर्घायुर्धार्मिको भवेत्॥

---

१. तुलसीदास की कलागत चेतना—डॉ० धीरेन्द्र बहादुर सिंह—पृष्ठ १५७

इसी प्रकार महाभाष्य में कहा गया है कि जिन शास्त्रों के आदि, मध्य और अन्त में मंगलवाची शब्दों का संयोजन होता है, वे शास्त्र अथवा काव्य, अध्येताओं के ऐश्वर्य और आयु की वृद्धि करते हैं।

मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि हि शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि च भवन्त्यायुष्मत्पुरुषाणि चाध्येतारश्च मङ्गल युक्ता यथा स्युरिति।

भूवादयो धातवः। अष्टाध्यायी १।३।१ पर महाभाष्य

रामचरितमानस में 'वर्णानामर्थ संघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ ॥'

श्लोक द्वारा नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण किया गया है। वर्णानां में तीनों अक्षर गुरु हैं; क्योंकि संयुक्त अक्षर के पूर्व रहने से वकार दीर्घ समझा गया है।[१]

मानस के आरम्भ में प्रयुक्त शब्द 'वर्णानां' का गण मगण है। श्रुतिबोध के अनुसार मगण का देवता भूमि है। मगण भूमि और श्री प्रदान करता है।[२]

रामचरितमानस के प्रारम्भ, मध्य और अन्त में मङ्गलवाची शब्दों और मांगलिक प्रसंगों का सन्निवेश किया गया है—

प्रारम्भ—मङ्गलानां च कर्तारौ वंदे वाणी विनायकौ।

मध्य—रामविवाह का प्रसंग

अन्त—रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं ॥
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं।

इस प्रकार मानस की रचना करते समय कवि का ध्यान छन्दः शास्त्र और व्याकरण शास्त्र—दोनों पर केन्द्रित था। इसीलिए आज विश्व में मानस का अतिशय समादर हो रहा है और वह असंख्य जनता का कंठहार हो रहा है।

(६) मानस के कथारम्भ में एक सुन्दर साहित्यिक मानस-रूपक द्वारा वस्तु-निर्देश किया गया है।

भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना ॥

मानस १।३६।४

(७) मानस में खलों की निन्दा तथा संतों की वंदना की गयी है—

बन्दौ संत असज्जन चरना।

× × ×

सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू ॥

---

१. संयोगे गुरु। अष्टाध्यायी। १।४।११
संयोगे परे ह्रस्वं गुरुसंज्ञं स्यात्। सिद्धान्त कौमुदी दीर्घं च। अष्टाध्यायी १।४।१२

२. मो भूमिः श्रियमातनोति।

(८) मानस के अरण्यकाण्ड में भुजङ्ग प्रयात, तोटक, नाराच और हरिगीतिका आदि विविध छन्दों का संयोजन किया गया है।

(९) प्रत्येक काण्ड के अन्तिम छन्द द्वारा अगले काण्ड के आख्यान की ओर संकेत किया गया है। प्रत्येक काण्ड के अन्त में छन्द की नियोजना की गयी है और इस छन्द के पश्चात् सोरठा या दोहा रखा गया है।

(१०) मानस में सन्ध्या, उषा, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, रजनी, प्रातः, मध्याह्न, आखेट, पर्वत, वन, ऋतु, समुद्र, संयोग-वियोग, मुनि, स्वर्ग, पुर, अध्वर, रणस्थान, मन्त्र और पुत्र-जन्मोत्सव आदि का भी प्रसङ्गानुसार सम्यक् प्रतिपादन किया गया है।

संध्या—बिगत दिवस गुरु आयसु पाई।
सूर्योदय—उयउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुखदाता॥
चन्द्रोदय—प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा।
रजनी—जबहि जाम जुग जामिनि बीती।
आखेट—बन मृगया नित खेलहिं जाई।
पर्वत—सिखर एक उत्तुंग अति देखी।
ऋतुएँ—बर्षा काल मेघ नभ छाये।
बर्षा बिगत सरद ऋतु आयी।
जहँ बसन्त ऋतु रही लोभाई।
हिम हिमसैल सुता सिव ब्याहू।
सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू।
ग्रीषम दुसह राम बन गवनू।

इसी प्रकार अरण्यकाण्ड (४।१-३) में भी स्त्री-रूपक के माध्यम से छहों ऋतुओं का उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त मानस में समुद्र आदि का भी उल्लेख किया गया है—

सागर—केहि बिधि तरिअ जलधि गम्भीरा।
× × ×
अति उत्तुंग जलनिधि चहुँ पासा।
संयोग—जँबते रामु ब्याहि घर आये। नित नव मङ्गल मोद बधाए॥
वियोग—मानस में श्रीराम और सीता के वियोग का वर्णन किया गया है—
तजौं देह कर बेग उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई॥
नगर—नगर देखाइ तुरत लै आयौं।

(११) रामचरित मानस के प्रत्येक काण्ड का नामकरण घटना, अवस्था (बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड), स्थान (अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड और

लङ्काकाण्ड) तथा गुण (सुन्दरकाण्ड) के आधार पर किया गया है। इसके साथ ही महाकाव्य का नामकरण नायक के गुण और चरित के आधार पर हुआ है।

पाश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य के दो भेद बतलाये हैं—

१—आथेन्टिक एपिक (संगीत प्रधान) २—लिटरेरी एपिक (साहित्य प्रधान)

अम्बरक्राम्बी—दी एपिक—पृष्ठ ३१

डॉ० राजपति दीक्षित का विचार है कि पाश्चात्य काव्यशास्त्र में प्रतिपादित महाकाव्य के निम्नांकित तत्व रामचरितमानस में भी पाये जाते हैं। अतएव मानस इस दृष्टि से भी उत्तम महाकाव्य सिद्ध होता है—

(१) रामचरितमानस गेय काव्य है।

(२) मानस की कथावस्तु में ऐतिहासिकता तथा सारगर्भिता के दर्शन होते हैं।

(३) मानस में अति प्राकृत उपादानों का उपयोग किया गया है।

(४) इसमें अमर्त्यों या देवों की भी अवतारणा की गयी है, जो समय-समय पर उपस्थित होकर नायक और नायिका के त्यागपूर्ण महान् कार्यों का जगत् के बीच महत्व स्थापित करते हैं।

इन सब तत्त्वों के आधार पर मानस की समानता मिल्टन के 'पैराडाइज् लास्ट' और दान्ते की 'डिवाइना कमेडिया' से सिद्ध हो जाती है।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में महाकाव्यों का वर्गीकरण निम्नांकित विधि से भी किया गया है—

(१) विकसित महाकाव्य (Epic of growth)

(२) कलापूर्ण महाकाव्य (Epic of Art)

राम काव्य के तत्त्व हजारों वर्षों से जनश्रुति के रूप में विकसित होते रहे हैं। बहुत समय के पश्चात् वाल्मीकि रामायण के रूप में उन तत्त्वों को लिखित काव्य का रूप प्राप्त हुआ। मानस भी वाल्मीकि रामायण की परम्परा का महाकाव्य है। अतः कहा जा सकता है कि मानस एक विकसित महाकाव्य (Epic of growth) है। इसके साथ ही रामचरितमानस में पाश्चात्य काव्य शास्त्र में उल्लिखित महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षण पाये जाते हैं और इसमें काव्यकला का चरमोत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। अस्तु मानस कलापूर्ण महाकाव्य (Epic of Art) भी सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते है कि भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से तथा भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र में निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षणों की दृष्टि से रामचरितमानस हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।

अनुबन्ध-चतुष्टय

रामचरित में अनुबन्ध चतुष्टय—अनुबन्ध के चार अंग होते हैं[1]—

१. विषय २. प्रयोजन ३. सम्बन्ध ४. अधिकारी।

(१) विषय—विषय का अर्थ है, प्रतिपाद्य विषय। रामचरितमानस में भगवान् राम और उनकी लीला तथा भक्ति का ही मुख्य रूप से वर्णन किया गया है। इसलिए इन्हीं को रामचरितमानस का विषय माना जाता है। गोस्वामी जी ने विषय का उल्लेख करते हुए कहा है—,

जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना।
प्रभु प्रतिपाद्य रामु भगवाना॥ रा० च० मा० ७।६१।३

ब्रह्म निरूपन धर्म विधि, बरनहिं तत्त्व विभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै, संजुत ग्यान विराग॥ रामचरितमानस १।४४

(२) प्रयोजन—रामचरितमानस की रचना के मूल में दो प्रकार के प्रयोजन अन्तर्निहित हैं—

क. कवि-सम्बन्धी प्रयोजन—स्वान्तः सुख की प्राप्ति एवं आत्मबोध—

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा,
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति।
रामचरितमानस।बालकाण्ड।मंगलाचरण श्लोक ७

निज सन्देह मोह भ्रम हरनी। करौं कथा भव सरिता तरनी॥
रामचरितमानस १।३१।२

ख. श्रोता या पाठक सम्बन्धी प्रयोजन—मोह-भ्रम का निवारण एवं लोकमङ्गल की सिद्धि—

मङ्गल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
रामचरितमानस १।३६१।छन्द

(३) सम्बन्ध—गोस्वामी तुलसीदास के काव्य के प्रतिपाद्य विषय और उसके प्रयोजन में साध्य-साधक भाव है।[2]

---

१. अधिकारी च विषयः सम्बन्धश्च प्रयोजनम्।
ग्रन्थादावश्यकर्त्तव्याः कर्त्रा श्रोतृ प्रवृत्तये॥
सम्बन्धश्चाधिकारी च विषयश्च प्रयोजनम्।
विनानुबन्धं ग्रन्थादौ मंगलं नैव लभ्यते॥
तुलसी-दर्शन-मीमांसा-पृष्ठ २३ पर उद्धृत

२. तुलसी-दर्शन-मीमांसा—पृष्ठ २४

(८) अधिकारी—गोस्वामी जी ने कहा है कि जो श्रद्धा-भक्ति, सत्संग-प्रेम और अतिशय भाव से युक्त हैं और जिनके हृदय में रामकथा सुनने की लालसा है, वे ही रामकथा के अधिकारी हैं—

रामकथा के तेइ अधिकारी। जिन्ह कें सतसंगति अति प्यारी ॥
गुरु पद प्रीति नीति रत जेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई ॥

रामचरितमानस ७।१२८।३-४

रामचरितमानस में याज्ञवल्क्य, शंकर, राम और काकभुशुण्डि तत्त्ववेत्ता अधिकारी गुरु तथा भरद्वाज, पार्वती, लक्ष्मण और गरुड़ तत्त्वजिज्ञासु अधिकारी श्रोता बतलाये गये हैं।

मानस-प्रणयन के प्रयोजन

गोस्वामी ने रामचरितमानस के प्रारम्भ में अपने काव्य-प्रणयन का प्रयोजन स्वान्तः सुख कहा है—

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा; भाषा निबन्धमतिमंजुलमातनोति।

उन्होंने काव्य के उपसंहार में भी इसी तथ्य की पुनरावृत्ति की है—

मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमः शान्तये,
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्।

गोस्वामी जी शास्त्राज्ञा का पालन करने वाले महाकवि थे। अतः उन्होंने साहित्य के लोकहितकारी पक्ष का भी ध्यान रखा है। काव्यप्रकाश में काव्य-रचना के निम्नांकित छह प्रयोजन बतलाये गये हैं—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहार विदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्ता सम्मिततयोपदेशयुजे ॥

काव्य प्रकाश १।२

अर्थात् काव्य की रचना छह प्रयोजनों की पूर्ति के लिए की जाती है। इनमें से तीन प्रयोजन कवि से सम्बन्धित हैं; कवि को काव्य से (१) यश और (२) अर्थ की प्राप्ति होती है। (३) कल्याणविधायक काव्य अथवा स्तोत्र की रचना से कवि की रोग-मुक्ति होती है। शेष तीन प्रयोजन पाठकों से सम्बन्धित हैं। उत्तम काव्य के अध्ययन से पाठकों को (१) व्यवहार-ज्ञान होता है। (२) उन्हें काव्यानन्द की अनुभूति होती है। (३) काव्य के माध्यम से पाठकों को कान्तातुल्य मधुर उपदेश प्राप्त होता है।

रामचरितमानस में उपर्युक्त छह प्रयोजनों में से अर्थोपार्जन (अर्थ कृते) नामक हेतु को छोड़कर शेष सभी प्रयोजनों की पूर्ति हो जाती है—

(१) यश से—कवि ने लिखा है कि जिस काव्य का विद्वानों में समादर नहीं होता, उसकी रचना में किया गया कवि का श्रम व्यर्थ होता है—

जो प्रबन्ध नहिं बुध आदरहीं । सो श्रम बादि बाल कवि करहीं ।।
रामचरितमानस १।१४।४

सरल कवित कीरति विमल, सोइ आदरहिं सुजान ।
सहज बयर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान ।। रामचरितमानस १।१४

इसलिए तुलसीदास जी की कामना है कि उनकी कृति का समादर हो—

प्रिय लागहि अति सबहिं मम भनिति रामजस संग । रामचरितमानस १।१०

× × ×

होहु प्रसन्न देहु बरदानू । साधु समाज भनिति सनमानू ।।
रामचरितमानस १।१४।४

सो उमेस मोहि पर अनुकूला । करिहिं कथा मुद मङ्गल मूला ।।
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ । बरनउँ रामचरित चित चाऊ ।।
भनिति मोरि सिव कृपाँ विभाती । ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती ।।

× × ×

सपनेहु साचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ ।। रामचरितमानस १।१५

अपनी कृति के बुधजनों द्वारा समादृत होने तथा उसके माध्यम से सुजनों को प्रसन्नता प्राप्त होने की कामना कवि के मन में अन्तर्भूत थी—

भाग छोट अभिलाषु बड़, करउँ एक बिस्वास ।
पैहहिं सुख सुनि सुजन सब, खल करिहहिं उपहास ।। रामचरितमानस १।८

(२) व्यवहार विदे—रामचरितमानस में यत्र तत्र व्यवहारनीति और धर्म का प्रतिपादन किया गया है, जिसका अध्ययन करने से पाठकों को व्यवहार-ज्ञान होता है । निम्नांकित चौपाइयों में शास्त्र, भूपति और स्त्री का सतर्क होकर सेवन करने की नीति का उल्लेख किया गया है—

सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ । भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ ।।
राखिअ नारि जदपि उर माहीं । जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं ।।

शासक को मुख की भाँति समाज के सभी वर्गों का पालन करना चाहिए—

मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहुँ एक ।
पालइ पोषइ सकल मिलि, तुलसी सहित बिबेक ।।
राज धर्म सरबसु एतनोई । जिमि मन माँह मनोरथ गोई ।।
रामचरितमानस २।३१५ एवं २।३१६।१

(३) शिवेतरक्षतये – उत्तम साहित्य सम्पूर्ण प्राणियों के लिये कल्याणकारी होता है; तभी उसकी 'साहित्य' अभिधा सार्थक सिद्ध होती है—

हितेन सह सहितं, सहितस्य भावः साहित्यम् ।

अर्थात् साहित्य में कल्याण का भाव अन्तर्भूत होता है। कवि का दृढ़ मत है कि उत्तम काव्य गंगा के सदृश सब के लिए हितकारी होता है—

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।

मानस १।१४।५

रामचरितमानस अपने प्रणेता और पाठकों; दोनों के लिए ही कल्याणकारी सिद्ध हुआ है। मानस की रचना से कवि का कल्याण हुआ है और कवि को परम विश्राम की प्राप्ति हुई है—

जाकी कृपा लवलेश तें मतिमन्द तुलसीदास हूँ।
पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

इसी प्रकार जो सज्जन रामचरितमानस का मनन, चिन्तन करेंगे, उन्हें भी परमसुख की प्राप्ति होगी—

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम रामधाम सिधावहीं।।
सतपंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरैं।
दारुन अविद्या पंच जनित बिकार श्री रघुबर हरैं।।

रामचरितमानस ७।१३०।२

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये।
ते संसार पतंग घोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः।।

रामचरितमानस ७।१३०।श्लोक २

कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं।।

रामचरितमानस ७।१२६।३

मङ्गल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।

रामचरितमानस १।१० छन्द

(४) सद्यः परनिर्वृतये—काव्यास्वादन जन्य रसानन्द ही काव्य रचना का मूल हेतु है। आचार्य भरत का मत है कि विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के योग से रस-निष्पत्ति होती है :—

विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः।

काव्य प्रदीप में 'सद्यः परनिर्वृतये' की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि सहृदय पाठकों को संचारी और स्थायी भाव आदि के संयोग से रसानन्द की अनुभूति होती है—

सहृदयस्य तु काव्यश्रवणमनन्तरमेव सकल प्रयोजनेपूत्तम स्थायिभावास्वादसमुद्भूत वेद्यान्तर सम्पर्क शून्यं रसास्वाद रूपमानन्दनम्।

कवि ने लिखा है कि जिस प्रकार मणि, माणिक और मोती की अनुपम शोभा राजमुकुट और सुन्दर रमणी के आभूषणों में प्रतिष्ठित होने पर ही होती है,

उसी प्रकार जहाँ काव्य का अध्ययन अध्यापन होता है उसका मनन चिन्तन होता है, वहीं रसानन्द की अनुभूति होती है—

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी ।।
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई ।।
तैसेहिं सुकबि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं ।।

रामचरितमानस १।११।१,२

(५) कान्ता सम्मिततयोपदेशयुजे—उपदेश तीन प्रकार के होते हैं--

१—प्रभु सम्मित उपदेश--वेद, शास्त्रादि
२ - सुहृत्सम्मित उपदेश—इतिहास, पुराणादि ।
३—कान्ता सम्मित उपदेश—काव्य, नाटक आदि ।

साहित्य दर्पण (१।२ की वृत्ति) में कहा गया है कि जिस प्रकार कटु ओषधि भी शर्करा के योग से सुग्राह्य हो जाती है—

कटुकौषधोपशमनीयस्य रोगस्यसितशर्करोपशमनीयत्वे
कस्य वा रोगिणः सितशर्कराप्रवृत्तिः साधीयसी न स्यात् ।

उसी प्रकार काव्य के माध्यम से वेदोपदेश पाठकों को रुचिकर प्रतीत होते हैं। 'रामादिवत्वर्तितव्यं न रावणादिवत्', अर्थात् हमें राम के समान चरित्रवान् और शीलवान् होना चाहिए, रावण के समान दुराचारी नहीं, इसी धार्मिक उपदेश को रामचरितमानस के माध्यम से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

काव्य-उत्पत्ति के हेतु

आचार्य मम्मट ने काव्योत्पत्ति के निम्नांकित तीन हेतु बतलाये हैं—[१]

(१) शक्ति (२) निपुणता (३) अभ्यास ।

महाकवि तुलसीदास ने काव्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है—

सुमति भूमिथल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू ।।
बरषहिं राम सुजस बरबारी। मधुर मनोहर मङ्गलकारी ।। बालकाण्ड ३६।२
हृदय सिन्धु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना ।।
जौं बरषइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू ।।

रामचरितमानस । बालकांड ११।४,५

अर्थात् हृदय अनुभूति का समुद्र है, मति रचनात्मक प्रतिभा, कल्पना या संकल्पात्मक बुद्धि है; जिसमें विचारों के समावेश से काव्य की उत्पत्ति होती है।

---

१. शक्तिनिपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञ शिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ।। काव्य प्रकाश १।३

अनुभूति संस्कारों का समवाय है। अतः हृदय, मति और विचार—इन तीन तत्त्वों के अन्तर्गत कवि ने रूपक द्वारा अनुभूति, कल्पना और बुद्धि—इन तीनों की चेतना-समन्वित क्रिया का स्पष्टीकरण किया है। उपर्युक्त रूपक में कवि ने आचार्य मम्मट द्वारा निर्दिष्ट काव्योत्पत्ति के तीनों हेतुओं का उल्लेख कर दिया है—

१—शक्ति—सुमति भूमि थल हृदय अगाधू।

२—लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात् निपुणता—

वेद पुराण उदधि घन साधू।

३—काव्यज्ञ शिक्षयाभ्यास—जो बरषइं बर बारि बिचारू।

इस प्रकार गोस्वामी जी का मत है कि—

१—सुमति रूपी कवित्व-शक्ति हो,

२—वेद, पुराण, शास्त्र आदि का सम्यक् ज्ञान हो,

३—सरस्वती की कृपा अर्थात् वाणी का परिष्कार हो और कवि के हृदय में उत्तम भाव उत्पन्न हों; तभी उत्तम काव्य की रचना होती है।

मानस-रूपक

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के प्रारम्भ में एक अत्यन्त भव्य साहित्यिक प्रसंग की उद्भावना की है, जो मानस-रूपक के नाम से विश्रुत है।

कवि के अनुसार सुन्दर सात्त्विक बुद्धि भूमि है, हृदय ही उसमें गहरा स्थान है। वेद पुराण समुद्र हैं और साधु सन्त मेघ हैं। साधु सन्त रूपी मेघ भगवान् श्रीराम के सुयश रूपी मङ्गलकारी जल की वर्षा करते हैं। वे सगुण लीला का जो विस्तार से वर्णन करते हैं, वही राम-सुयश रूपी जल की निर्मलता है, जो मल का नाश करती है। जिस प्रेमाभक्ति का वर्णन नहीं किया जा सकता; वही इस जल की मधुरता और शीतलता है। वह पावन जल बुद्धि रूपी पृथ्वी पर गिरा और एकत्र होकर श्रवणेन्द्रियरूपी मार्ग से चला तथा मानस (हृदय) रूपी श्रेष्ठ स्थान में भरकर स्थिर हो गया। मानस की कथा में जो चार प्रकार के श्रोता और वक्ता कहे गये हैं, वे ही इस मानस-सर के चार सुन्दर घाट हैं। रामचरितमानस के सप्तकाण्ड ही इस मानस-सर की सात सीढ़ियाँ हैं। श्रीराम की निर्गुण और निर्बाध महिमा का वर्णन ही इस सुन्दर जल की गहराई है।[1] सुन्दर चौपाइयाँ ही इसमें घनी फैली हुई

---

१. सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मङ्गलकारी॥
लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥

(शेष अगले पृष्ठ पर देखें)

कमलिनी हैं। सुन्दर छन्द इसके विविध रंग वाले कमल हैं।[1] सत्कर्मों के पुंज भौंरे, ज्ञान विराग हंस, ध्वनि, वक्रोक्ति, मनोहर मीन धर्मार्थकाममोक्ष और नवरसों का विवेचन इस सर के विविध जलचर हैं। संतसभा आम्रपुंज, भक्ति-निरूपण लता बितान, यमनियम फूल और ज्ञान फल है। श्रीराम के चरणों में अनुराग इस ज्ञानरूपी फल का रस है। निर्मल मन ही माली है, जो कथा-श्रवण से होने वाले रोमांचरूपी बाग को प्रेम रूपी जल से सिंचित करता है।[2] दुष्ट और विषयी जीव ही कौए और बगुले हैं,

---

(पूर्व पृष्ठ का अवशिष्टांश)

सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई।।
मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन।।
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना।।
सुठि सुन्दर संबाद बर, बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि।। १।३६
सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना।।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा।।
रामचरितमानस १।३७।१

---

१. राम सीय जस सलिल सुधा सम। उपमा बीचि बिलास मनोरम।।
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई।।
छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरग कमल कुल सोहा।।
रामचरितमानस १।३७।२,३

२. अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरन्द सुबासा।।
सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ग्यान बिराग बिचार मराला।।
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहुभांती।।
अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी।।
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा।।
सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जलबिहग समाना।।
संतसभा चहुँदिसि अँवराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई।।
भगति निरुपन बिबिध बिधाना। छमा दया दम लता बिताना।।
सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरि पद रति रस बेद बखाना।।
औरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा।।
पुलक बाटिका बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारु।
माली सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारु।। रामचरितमानस १।३७

जो इस मानस-सर में भूलकर भी नहीं जाते हैं। इसी प्रकार यहाँ विषय-कथा रूपी घोंघों, मेढकों और सेवार का भी सर्वथा अभाव है। इस मानस-सर तक पहुँचने में अनेक विघ्न होते हैं, जो दुर्गम शैल के समान बाधक होते हैं। भगवान् राम की कृपा होने पर ही इस मानस-सर में स्नान करने का सुअवसर मिलता है। ऐसे मानस-सर के दर्शन मानस-नेत्रों (दिव्य नेत्रों) से ही होते हैं, भौतिक नेत्रों द्वारा यह सर दृष्टिगोचर नहीं होता है।[१]

चार घाट—रामचरितमानस की कथा का विकास चार वक्ताओं और श्रोताओं के माध्यम से हुआ है। इन्हीं चारों वक्ताओं और श्रोताओं की प्रवृत्ति के आधार पर मानस रूपी मानसरोवर के चार घाट कहा गया है। ये घाट निम्नांकित हैं—

(१) ज्ञान-घाट—शंकर-पार्वती संवाद—यहाँ श्रोता उमा आर्त्त भक्त के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। उनका आर्त्त भाव निम्नांकित वचनों से व्यक्त होता है—

गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं ॥
अति आरत पूँछउँ सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया ॥

इस घाट के वक्ता शम्भु हैं, जो ज्ञानी बतलाये गये हैं—

प्रभु समर्थ सर्वग्य सिव, सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि, प्रनत कल्पतरु नाम ॥

(२) उपासना-घाट—काकभुशुंडि-गरुड़ संवाद—इस घाट के श्रोता गरुड़ और वक्ता काकभुशुंडि हैं। गरुड़ जिज्ञासु भाव से ही काकभुशुंडि के पास गये थे। अन्त में उनकी जिज्ञासा का समाधान हो गया था—

गयउ मोर सन्देह।

इस घाट के उत्तरार्द्ध में मुख्यतः ज्ञान और भक्ति का विवेचन किया गया है।

(३) कर्म-घाट—याज्ञवल्क्य-भरद्वाज संवाद—इस घाट के श्रोता भरद्वाज ज्ञानी भक्त कहे जा सकते हैं। 'परमारथ पथ परम सुजाना', से उक्त मत की पुष्टि होती है। वक्ता याज्ञवल्क्य भी भरद्वाज को ज्ञानी भक्त मानते हैं।

राम भगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हार मैं जानी ॥

(४) दीन-घाट (प्रपत्तिघाट) तुलसीदास-सुजन संवाद—इस घाट के वक्ता गोस्वामी जी हैं और श्रोता उनका मन है। उन्होंने अपने मन को अनेक बार सम्बोधित किया है—

---

१. सकल विघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही ॥

× × ×

अस मानस मानस चख चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही ॥

रामचरितमानस १।३६।५

'सुन सठ मना।'
'ताहि भजिहि मन तजि कुटिलाई।'
'मन करि देख विचारि।'

गोस्वामी जी ने अपने मानस-पटल में उद्बुद्ध विषाद के शमन के लिए ही मानस की रचना की थी—

स्वान्तः सुखायतुलसीरघुनाथगाथा,
भाषा निबन्धमतिमंजुलमातनोति ।।
रामचरितमानस।बालकाण्ड।श्लोक ७

मत्वा तद्रघुनाथ नाम निरतं स्वान्तस्तमः शान्तये,
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ।।
रामचरितमानस।उत्तरकांड।श्लोक १

मानस के उपसंहार में कवि ने भगवान् श्रीराम के प्रति अपनी अनन्य अनुरक्ति की भावना व्यक्त की है—

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम ।। मानस।उत्तरकांड।१३०

आध्यात्मिक रूपक

'यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे' के अनुसार बाह्य जगत् के समान मानस में भी सत् और असत् प्रवृत्तियों में संघर्ष होता रहता है। गोस्वामी जी ने विनय पत्रिका (पद संख्या ५८) में सम्पूर्ण रामकथा का आध्यात्मिक रूपक प्रस्तुत किया है।

कवि ने लिखा है कि ज्ञान रूपी दशरथ तथा भक्ति रूपी कौशल्या के संयोग से श्रीराम का आविर्भाव होता है। शरीररूपी ब्रह्माण्ड में प्रवृत्ति रूपी लङ्का का गढ़ है। मनरूपी मयदानव ने इसका निर्माण किया है। शरीर के पाँच कोश—अन्नप्राणमन विज्ञान आनन्द—ही प्रवृत्ति रूपी लङ्का के प्रासाद हैं। देहाभिमान अत्यन्त भयंकर, अथाह, अपार और दुस्तर समुद्र है, जिसमें राग, द्वेष और कामना आदि अनेक घड़ियाल हैं। उसमें आसक्ति तथा संकल्पों की ऊर्मियां उठ रही हैं। इस लङ्का में मोहरूपी रावण और अहंकार रूपी कुम्भकरण निवास करते हैं। शान्ति भंग करने वाला काम ही मेघनाद है। लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर, क्रोध देवान्तक, द्वेष दुर्मुख, दम्भ खर, कपट अकम्पन, दर्प मनुजाद और मद शूलपाणि नामक राक्षस हैं। मोहादि राक्षसों के साथ इन्द्रियां ही राक्षसी हैं। जीव विभीषण हैं, जो इनके दुःख से दुःखी हो रहा है। यम, नियम आदि दिक्पाल हैं और इन्द्र मोह रूपी रावण के अधीन होकर भयभीत रहते हैं। भक्त जीव प्रार्थना करता है—

हे नाथ ! आप मोक्ष के दाता हैं। आप ज्ञान रूपी मर्कटाधीश सुग्रीव से इस विश्वरूपी सागर में पुल बनवा दीजिए। फिर वैराग्य रूपी पवन कुमार, विषय-वन-

प्रासादों को भस्म कर देंगे। हे ज्ञानघन ! आप दास जीव के लिए मोहरूपी दानव वंश का नाश कर मेरे हृदय में निवास कीजिए।' अन्त में प्रभु की कृपा होने पर ज्ञानरूपी बादलों के उदय होने पर जीव का परम कल्याण होता है। जीव को आत्यन्तिक कल्याण की प्राप्ति ही श्रीराम को रावण के बन्धन से मुक्त सीता की संप्राप्ति है।

प्रस्तुत आध्यात्मिक रूपक में विनयपत्रिका के निम्नांकित पद का आधार ग्रहण किया गया है—

वपुष ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्ति लंका दुर्ग, रचित मन दनुज मय रूपधारी।
विविध कोशौघ अति रुचिर मंदिर निकर, सत्त्वगुण प्रमुख त्रैकटककारी॥
कुणप अभिमान सागर भयंकर घोर, विपुल अवगाह दुस्तर अपारं।
नक्र रागादि संकुल मनोरथ सकल, संग संकल्प बीची विकारं॥
मोह दशमौलि तद्भ्रात अहंकार, पाकारिजित काम विश्रामहारी।
लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट क्रोध पापिष्ठ विबुधान्तकारी॥
द्वेष दुर्मुख, दम्भ खर अकम्पन कपट, दर्प मनुजाद मद शूलपानी।
अमित बल परम दुर्जय निशाचर निकर सहित षडवर्ग गो यातुधानी॥
जीव भवदंघ्रि सेवक विभीषण बसत मध्य दुष्टाटवीग्रसित चिंता।
नियम-यम सकल सुरलोक लोकेश लंकेश-वश नाथ ! अत्यन्त भीता॥
ज्ञान अवधेश गृह गेहिनी भक्ति शुभ, तत्र अवतार भूभार हर्ता।
भक्त संकष्ट अवलोकि पितु-वाक्य कृत गमन किय गहन वैदेहि भर्ता॥
कैवल्य साधन अखिल भालु मर्कट विपुल ज्ञान सुग्रीव कृत जलधि सेतू।
प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजन तनय, विषम वन भवनमिव धूमकेतू॥
दुष्ट दनुजेश निर्वंशकृत दासहित, विश्वदुख हरण बोधैकरासी।
अनुज निज जानकी सहित हरि सर्वदा दास तुलसी हृदय कमलवासी॥

विनय पत्रिका ५८

श्लीलता की अभिव्यक्ति

काव्य प्रकाश में अश्लीलता तीन प्रकार की मानी गयी है—

त्रिधाऽश्लीलम्। काव्यप्रकाश ७।५० पृष्ठ १८६

त्रिधेति व्रीडाजुगुप्साऽमङ्गलव्यंजकत्वाद्। काव्यप्रकाश सप्तम उल्लास, पृष्ठ १८७

प्रकृतयो दिव्या अदिव्या दिव्यादिव्याश्च वीररौद्र शृंगारशान्तरसप्रधाना धीरोदात्त-धीरोद्धत-धीरललित-धीरप्रशान्ताः उत्तमाधममध्यमाश्च। रतिहास शोकाद्भुतानि अदिव्योत्तम प्रकृतिवत् दिव्येष्वपि। किन्तु रतिः सम्भोग शृङ्गार रूपा उत्तमदेवता विषया न वर्णनीया। तद्वर्णनं हि पित्रोः सम्भोगवर्णनमिवात्यन्तमनुचितम्! काव्य प्रकाश। सप्तम उल्लास, पृष्ठ २६६

अर्थात् प्रकृति भेद से नायक तीन प्रकार के होते हैं--

(१) दिव्य (२) अदिव्य (३) दिव्यादिव्य। हास, शोक आदि भावों का वर्णन तीनों प्रकार की प्रवृत्ति वाले नायकों के सम्बन्ध में किया जाना चाहिए, किन्तु दिव्य प्रकृति वाले नायकों के सम्बन्ध में सम्भोग-वर्णन नहीं करना चाहिए। उत्तम दिव्य प्रकृति वाले नायकों के प्रति किया गया सम्भोग वर्णन उतना ही अनुचित है, जितना अपने माता-पिता के प्रति किया जाने वाला सम्भोग वर्णन।

गोस्वामी जी ने सीता और पार्वती के सौन्दर्य-वर्णन में मर्यादा का पूर्ण ध्यान रखा है। इसलिए इनका शृङ्गार वर्णन सर्वथा अनवद्य कहा जाता है।

पार्वती—सुषमा

'संस्कृत के महाकवि कालिदास ने पार्वती और शंकर के दम्पति-जीवन का अश्लील चित्रण किया है, जिसकी प्रायः सभी समीक्षकों ने निन्दा की है। इस दृष्टि से गोस्वामी जी द्वारा किया गया निम्नांकित शृंगार-वर्णन कितना उदात्त और मर्यादित प्रतीत होता है--

जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहि सिंगारु न कहउँ बखानी॥

रामचरितमानस १।१०३।२

देखत रूप सकल सुर मोहे। बरनइ छबि अस जग कवि को है॥
जगदम्बिका जानि भव बामा। सुरन्हि मनहिं मन कीन्ह प्रनामा॥
सुन्दरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिन्हु बदन बखानी॥

रामचरितमानस १।१००।३,४

सीता—सुषमा

गोस्वामी जी ने सीता के दिव्य सौन्दर्य का उल्लेख करते हुए लिखा है—

सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजसु को लेई॥
जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग अस जुबति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
× × ×
जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई॥
× × ×
एहि बिधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि, कहहिं सीय सम तूल॥
× × ×
सोह नवल तनु सुन्दर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी॥

रामचरितमानस १।२४७।२ से १।२४८।१ तक

प्रस्तुत प्रसंग में कवि ने सीता की दिव्य सुषमा का चित्रण किया है, किन्तु कहीं भी अश्लीलता नहीं आने पायी है। कवि ने सीता को सैकड़ों उमा और रमा के समान सुन्दर कह कर भी मर्यादा की रक्षा की है। यह श्लाघनीय है। कवि ने 'नवल तनु' से सीता के यौवनागमन को व्यंजित किया है, तथा 'जगत्-जननी' कह कर शृंगार रस का वात्सल्य और शान्त रस में पर्यवसान कर दिया है। कवि ने कालिदास के प्रसिद्ध श्लोक[2] से 'दीपशिखा' शब्द लेकर जैसी भाव-व्यंजना की है, वैसी सम्भवतः कालिदास भी नहीं कर सके—

सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छबि गृहँ दीप सिखा जनु बरई॥

अर्थात् सीता ने अपनी दिव्य छवि से निष्प्रभ छवि को कान्तिमान् बना दिया है। सीता की छवि, छवि रूपी प्रासाद में दीपशिखा के समान प्रज्वलित हो रही है। यहाँ 'दीपशिखा' शब्द से सीता के तेजस्वी सौन्दर्य की व्यंजना होती है। जिस प्रकार अत्यन्त तीव्र प्रकाश की ओर दृष्टि नहीं उठती; उसी प्रकार अत्यन्त तीव्र सौन्दर्य पर भी दृष्टि नहीं ठहरती। सामान्य गृह में भी दीपशिखा से कान्ति आ जाती है। फिर छविरूपी गृह में प्रज्वलित दीपशिखा, उसी प्रकार अनन्त गुना छवि की सृष्टि कर देती है, जिस प्रकार दीपशिखा को दर्पण के सामने रख देने पर अनन्त गुना प्रकाश उत्पन्न हो जाता है।

जगन्माता सीता की शोभा चकाचौंध तथा मोह उत्पन्न करने वाली थी—

जब सिय रंग भूमि पगधारी। देखि रूप मोहे नर नारी॥

यहाँ 'आकर्षित' के स्थान पर 'मोहे' शब्द रखने से श्री-आधिक्य की व्यंजना होती है, तथा इसके साथ ही सीता के मातृ-पद की रक्षा भी हो जाती है। एक पंक्ति में इतने गूढ़ भाव रख देना तुलसीदास जी ऐसे महाकवि के द्वारा ही सम्भव था।

यह छवि 'सुन्दरता को भी सुन्दर करती थी', इसमें अपूर्व भाव-व्यंजना दृष्टिगोचर होती है, जो उनके प्रौढ़ साहित्यिक ज्ञान को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। इस पद्धति के दर्शन अन्य स्थलों में भी होते हैं—

१—त्रासु त्रास उर कहुँ डर होई।
२—रामसमाजहिं लाज लजानी।
३—धीरजहु कर धीरज भागा।
४—नवीन प्रीति के प्रीति सुहाई।
५—मुनि बिलाप दुखहू दुख लागा।
६—तनु धर सोच लाग जनु सोचन।

१. तुलसीदास और उनका युग—डॉ० राजपति दीक्षित, ४८६-४८७
२. सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्र मार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः॥ रघुवंश ६।६७

रस-निष्पत्ति

भावभेद रसभेद अपारा।

रस—रस शब्द 'रस आस्वादन स्नेहयोः' धातु से निष्पन्न होता है। ऋग्वेद में रस शब्द का उल्लेख हुआ है।[१] तैत्तिरीय उपनिषद् में ब्रह्म को रस कहा गया है—

रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति। तैत्तिरीय उपनिषद् २।७

काव्यशास्त्र में आनन्द प्रदायक काव्य तत्त्व को रस कहा गया है—

रस्यते असौ रसः। अर्थात् जो आस्वाद्य है, वह रस है। रसनाद् रसः। सरते इति रसः। अर्थात् जो प्रवाहित हो, वह रस है।

कामसूत्र में रस शब्द का काव्य शास्त्रीय रस के अर्थ में प्रयोग हुआ है—

तदिष्टभावलीलानुवर्तनम्। कामसूत्र ६।२।३५

नायकस्य शृंगारादिषु य इष्टो रसो भावः स्थायिसंचारिसात्त्विकेषु, लीला चेष्टितानि तेषामनुवर्त्तनम्। कामसूत्र ६।२।३५ की जय मङ्गली टीका

रसों की संख्या

आचार्य भरत ने शान्त को मूल रस कह कर शेष आठ रसों को उससे उत्पन्न हुआ माना है।[२] उन्होंने आठ स्थायी भावों का उल्लेख किया है।[३] इस प्रकार उनके मत से नाटक में आठ रस होते हैं। परन्तु रसों का उल्लेख करते समय उन्होंने नव रस माने हैं।[४] आचार्य विश्वनाथ ने वात्सल्य को भी रस माना है।[५] रुद्रट ने प्रेयान् नामक नये रस का उल्लेख किया है।[६] भोज ने प्रसिद्ध नव रसों

१. दधानः कलशे रसं। ऋग्वेद

२. भावा विकारा रत्याद्याः शान्तस्तु प्रकृतिर्मतः।
विकारः प्रकृतेर्जातः पुनस्तत्रैव लीयते॥
स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद्भावः प्रवर्तते।
पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते॥ नाट्यशास्त्र ६।८६,८७

३. रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः॥ नाट्यशास्त्र ६।१७

४. शृंगार हास्य करुणा रौद्र वीर भयानकाः।
बीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव नाट्यरसाः स्मृताः॥ ना० शा० ६।१५

५. स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः। सा० द० ३।२५१

६. शृंगार वीर करुणा बीभत्सभयानकाद्भुता हास्यः।
रौद्रः शान्तः प्रेयानिति मन्तव्या रसाः सर्वे॥ काव्यालंकार १२।३

के अतिरिक्त प्रेयान्, उदात्त और उद्धत को भी रस माना है।[1] रूपगोस्वामी और मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति को भी रस रूप में मान्यता प्रदान की है। हरिभक्तिरसामृतसिन्धु में भक्ति को मधुर रस कहा गया है।[2]

स्थायी भाव—सहृदयों के हृदय में वासना रूप में स्थित शाश्वत मनोविकार साहित्य में स्थायी भाव कहलाते हैं।

संचारिणा प्रधानानि देवादि विषया रतिः।
उद्बुद्धस्थायी च भाव इत्यभिधीयते ॥ सा० द० ३।२६०

संचारी-भाव—ये अस्थायी होते हैं और स्थायी भावों के उद्बुद्ध होने में सहायक होते हैं। संचारी भाव तेंतीस होते हैं—

विशेषादाभिमुख्येन चरन्ता व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नास्त्रयस्त्रिंशच्चतद्भिदाः ॥ सा० द० ३।१४०
निर्वेदावेगदैन्यश्रममदजडता औग्र्यमोहौ विबोधः।
स्वप्नापस्मारगर्वा मरणमलसतामर्षनिद्रावहित्थाः ॥
औत्सुक्योन्मादशंकाः स्मृतिमतिसहिता व्याधि सत्रासलज्जा।
हर्षासूयाविषादाः सधृति चपलता ग्लानि चिन्ता वितर्काः ॥

साहित्यदर्पण ३।१४१

विभाव—सहृदयों के हृदय में संस्कार रूप में स्थित रति आदि स्थायी भावों के उद्दीपक कारण को विभाव कहते हैं।

रत्याद्युद्बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः। साहित्य दर्पण ३।२९

वे वाणी और अंगों के आश्रित अनेक अर्थों का अनुभव कराते हैं, अतः उन्हें विभाव कहते हैं।

बहवोऽर्था विभाव्यन्ते वागंगाभिनयाश्रयाः।
अनेन यस्मात्तेनायं विभावभूतिः कथ्यते ॥ नाट्य शास्त्र ७।६

विभाव दो प्रकार के होते हैं, १. आलम्बन २. उद्दीपन।

आलम्बनोद्दीपनाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ। सा० द० ३।२९

आलम्बन—आलम्बन विभाव वे हैं, जिनका आधार लेकर आश्रय के हृदय में रति आदि स्थायी भाव जाग्रत होते हैं।

उद्दीपन—आलम्बन की चेष्टाओं और प्राकृतिक पर्यावरण को उद्दीपन कहते हैं। इसके द्वारा स्थायी भाव उद्दीप्त होते हैं।

---

१. बीभत्सहास्य प्रेयांसः शान्तोदात्तोद्धता रसाः। सरस्वती कंठाभरण ५।१६४
२. वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः पुष्टिं नीतामता हृदि।
मधुराख्यो भवेद्भक्तिरसोऽसौ मधुरा रतिः ॥ ह० भ० र० ३।५।१

अनुभाव—स्थायी भावों के उदय होने के पश्चात् जो शारीरिक विकार दिखलायी पड़ते हैं, वे अनुभाव कहलाते हैं। जो स्थायी भावों का अनुभव कराते हैं, वे अनुभाव हैं :—

अनुभावयन्तीति अनुभावाः ।

अनुभाव चार प्रकार के होते हैं[1]—

(१) कायिक अनुभाव—कटाक्ष आदि आंगिक चेष्टायें,

(२) मानसिक अनुभाव—वाचिक कथोपकथन आदि,

(३) आहार्य अनुभाव—अलंकार आदि को धारण करना,

(४) सात्त्विक अनुभाव—सत्त्व से उत्पन्न होने वाले विकारों को सात्त्विक अनुभाव कहते हैं। सत्त्व का अर्थ है—भावक के चित्त को सुख-दुःख आदि की भावनाओं से भावित करना। सात्त्विक अनुभाव आठ होते हैं—

स्तम्भ, वेपथु, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, विवर्णता, अश्रुपात और चेतना हीनता।

रस-निष्पत्ति की प्रक्रिया

आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से रस निष्पत्ति होती है[2]—

विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः ।

नाट्यशास्त्रम्।षष्ठोऽध्यायः पृष्ठ ६२०

आचार्य भरत की उपर्युक्त कारिका में प्रयुक्त संयोग और निष्पत्ति के अर्थ को लेकर परवर्ती आचार्यों में मतभेद पाया जाता है। इस कारिका में यह भी नहीं बतलाया गया है कि रस की निष्पत्ति किसको होती है—नाटक के नट (पात्र) को, या सामाजिक (पाठक या श्रोता या दर्शक) को। इसी प्रकार राम, दुष्यन्त आदि ऐतिहासिक पुरुषों को रस-निष्पत्ति हुई या नहीं ? इन्हीं प्रश्नों का उत्तर देते हुए चार प्रमुख आचार्यों ने अपने-अपने ढंग से इस सूत्र की व्याख्या प्रस्तुत की है[3]—

१. आंगिको वाचिकश्चैव ह्याहार्यः सात्त्विकस्तथा ।
चत्वारो ह्यभिनया ह्येते विज्ञेया नाट्यसंश्रयाः । ना० शा० ६।२३
उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन् ।
लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः । साहित्य दर्पण ३।१३४

२. यथा हि नाना व्यंजनौषधि द्रव्यसंयोगाद्रस निष्पत्तिः तथा नाना भावोपगमाद्रस-निष्पत्तिः । यथा हि गुडादिभिर्द्रव्यैर्व्यंजनैरौषधिभिश्च षाडवादयोरसा निर्वर्त्यन्ते तथा नाना भावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति ।
अभिनव भारती—पृष्ठ ६७७-६७८

३. सिद्धान्त और अध्ययन—बाबू गुलाब राय—पृष्ठ १६१

क्रमांक	आचार्य	वाद	रस की स्थिति	संयोग का अर्थ	निष्पत्ति का अर्थ
१	भट्टलोल्लट	उत्पत्तिवाद या आरोपवाद	रस मूल रूप से अनुकार्यों (मूल व्यक्तियों) में रहता है। नटादि में इसका आरोप किया जाता है और गौण रूप से अनुकरण के चमत्कार से सामाजिकों को रसानुभूति होती है।	कार्यकारण भाव	उत्पत्ति
२	शंकुक	अनुमिति वाद	नट के अनुभावादि को देखकर मूल पात्रों में रस की स्थिति का अनुमान किया जाता है। अनुकरण के चमत्कार से गौण रूप से सामाजिकों को भी रस की अनुभूति होती है।	गम्य-गमक भाव या अनुमाप्य-अनुमापक भाव	अनुमिति
३	भट्टनायक	भुक्तिवाद	भट्टनायक के मत से रसनिष्पत्ति के पूर्व दो क्रियायें होती है—(१) अभिधा के द्वारा शब्दार्थ का ज्ञान होता है। (२) भावकत्व व्यापार के द्वारा विभावादि और रत्यादि स्थायी भाव साधारणीकृत होकर सामाजिकों के भोग के विषय बनते हैं। इनके मत से रसानुभूति सामाजिकों को होती है।	भोज्यभोजक भाव	भुक्ति
४	अभिनव गुप्त	अभिव्यक्ति वाद	सामाजिकों के हृदय में संस्कार रूप में स्थित अव्यक्त रति, क्रोध आदि स्थायी भाव काव्य या नाटक के विभावादि के पठन अथवा श्रवण से उद्बुद्ध होकर उसी प्रकार रस रूप में परिणत होकर आनन्द का कारण बनते हैं, जिस प्रकार जल के योग से तप्त मिट्टी की अव्यक्त गंध व्यक्त हो जाती है।	व्यंग्य-व्यंजक भाव	अभिव्यक्ति

चारों आचार्यों के मतों का सारांश इस प्रकार है[१] —

१. रामचरितमानस—वाग्वैभव, पृष्ठ ३३२-३३३

(१) आचार्य लोल्लट—विभावानुभावव्यभिचारि उत्पादक उत्पाद्य सम्बन्धात् रसोत्पत्तिः ।

(२) आचार्य शंकुक—विभावानुभावव्यभिचारि अनुमापक अनुमाप्य सम्बन्धात् रसानुमितिः ।

(३) आचार्य भट्टनायक—विभावानुभावव्यभिचारि भोजक भोज्य सम्बन्धात् रसभुक्तिः ।

(४) आचार्य अभिनव गुप्त—विभावानुभावव्यभिचारि व्यंजक व्यंग्य सम्बन्धात् रसाभिव्यक्तिः ।

आचार्य विश्वनाथ का मत है कि विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के योग से व्यक्त होकर रति आदि स्थायी भाव ही रस रूप में परिणत हो जाते हैं—

विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा ।
रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम् ।। साहित्य दर्पण ३।१

तुलसी-साहित्य में रस-निष्पत्ति

विभाव—उद्दीपक दृश्य, आलम्बन और आलम्बन की चेष्टाओं को विभाव कहते हैं । निम्नांकित प्रसंग में श्रीराम आश्रय, सीता आलम्बन और सीता का वाटिका-भ्रमण उद्दीपन विभाव है—

तात जनक तनया यह सोई । धनुष जग्य जेहि कारन होई ।।
पूजन गौरि सखी लै आई । करत प्रकास फिरइ फुलवाई ।।
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मनु छोभा ।।

अनुभाव

(१) कायिक अनुभाव

बहुरि बदन बिधु अंचल ढांकी । पिअ तन चितइ भौंह करि बांकी ।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि । निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि ।।
रामचरितमानस २।११।६-७

यहां सीता द्वारा अपने मुख को घूँघट से ढकना और राम को तिरछी चितवन से देखना आदि सीता की आंगिक चेष्टायें कायिक अनुभाव हैं ।

(२) आहार्य अनुभाव—आश्रय की वेष-रचना का उल्लेख होने से निम्नांकित चौपाई में आहार्य अनुभाव है—

मोर पख सिर सोहत नीके । गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के ।।
रामचरितमानस।बालकाण्ड २३३।२

(३) सात्त्विक अनुभाव—निम्नांकित चौपाई में आश्रय के अंग-विकार का उल्लेख होने से सात्त्विक अनुभाव है—

थके नयन रघुपति छबि देखें । पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें ।

रामचरितमानस।बालकाण्ड २३२।५

(४) मानसिक अनुभाव--निम्नांकित चौपाई में आश्रय के अन्तःकरण की वृत्ति से उत्पन्न मोद आदि भावों का उल्लेख होने से मानसिक अनुभाव है—

देखि सीय सोभा सुख पावा । हृदय सराहत बचन न आवा ।।

बालकाण्ड २३०।५

संचारी भाव--डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार रामचरितमानस में सभी भावों का सन्निवेश हुआ है[1]—

(१) निर्वेद—अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती । सब तजि भजन करौं दिन राती ।।
(२) ग्लानि—अइहउँ अवध कवन मुँहु लाई । नारि हेतु प्रिय बंधु गँवाई ।।
(३) शंका—तिन्हहि बिलोकि ससंकेउ मारू ।
(४) असूया—तब सिय देखि भूप अभिलाषे । कूर कपूत मूढ़ मन माखे ।।
(५) श्रम--थके नयन रघुपति छबि देखें ।
(६) मद--जग जोधा को मोहि समाना ।
(७) धृति—धरि बड़ धीर राम उर आनी ।
(८) आलस्य--सुमिरि राम गुर बिप्र पद किए नींद बस नैन ।
(९) विषाद--सभय हृदयँ बिनवत जेहि तेही ।
(१०) मति—उपज्यो ज्ञान बचन तब बोला ।
(११) चिन्ता—चितवत चकित चहूँ दिसि सीता । कहँ गए नृपकिसोर मन चीता ।।
(१२) मोह—लीन्हि लाइ उर जनक जानकी ।
(१३) स्वप्न—दिन प्रति देखहुँ रात कुसपने ।
(१४) विबोध—सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के । उघरे पटल परसुधर मति के ।।
(१५) स्मृति--सुधि न तात सीता कर पाई ।
(१६) अमर्ष—जौं राउर अनुसासन पावौं । कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं ।।
(१७) गर्व—भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही । बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ।।
(१८) उत्सुकता--बेगि चलिअ प्रभु आनिअ, भुजबल रिपु दल जीत ।
(१९) अवहित्था—तन सकोचु मन परम उछाहू । गूढ़ प्रेम लखि परइ न काहू ।।
(२०) दीनता—पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं । भूतल परेउ लकुट की नाईं ।।

× × ×

छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई । सुनिहहिं बाल बचन मन लाई ।।

(२१) हर्ष—जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हर्ष न जाय कहि ।

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ ४३१-४३२

(२२) व्रीड़ा—गुरु जन लाज समाज बड़ि, देखि सीय सकुचानि ।
(२३) उग्रता—एक बार कालहु किन होई ।
(२४) निद्रा—ते सिय राम साथरी सोए ।
(२५) व्याधि—देखि व्याधि असाधि नृप, परेउ धरणि धनु माथ ।
(२६) मरण—राम राम कहि राम कहि, बालि कीन्ह तनु त्याग ।
(२७) अपस्मार—अस कहि मुरुछि परे महिराऊ ।
(२८) आवेग—उठे राम सुनि प्रेम अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ।।
(२९) त्रास—भा निरास उपजी मन त्रासा ।
(३०) उन्माद—पूँछत चले लता तरु पाँती ।
(३१) जड़ता—मुनिमग माँझ अचल होइ वैसा । पुलक सरीर पनस फल जैसा ।।
(३२) चपलता—प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि, राजत लोचन लोल ।
(३३) वितर्क—लंका निसिचर निकर निवासा । इहाँ कहाँ सज्जन कर वासा ।।

× × ×

कारन कवन नाथ नहिं आयउ । जानि कुटिल किधौं मोहिं बिसरायउ ।।

रस—तुलसी-साहित्य के विभिन्न प्रसंगों में सभी रसों की निष्पत्ति हुई है । निम्नांकित उद्धरण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं—

(१) शृंगार रस—संयोग शृंगार—

मर्यादावादी होने के कारण कवि ने संयोग शृंगार का चित्रण अधिक नहीं किया है ।

बालकाण्ड के पुष्पवाटिका—प्रसंग में संयोग शृंगार का किंचित् प्रस्फुटन हुआ है—

कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन राम हृदय गुनि ।।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही । मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही ।।
अस कहि फिर चितये तेहि ओरा । सिय मुख ससि भये नयन चकोरा ।।
सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई । छवि गृहँ दीप सिखा जनु बरई ।।

किन्तु मर्यादा पुरुषोत्तम होने के कारण श्रीराम तुरन्त ही अपने कुल-गौरव का स्मरण कर इन्द्रिय-निग्रह कर लेते हैं—

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मन कुपंथ पगु धरइ न काऊ ।।

निम्नांकित पद में संयोग शृंगार का स्थायी भाव (रति); आलम्बन, उद्दीपन और व्यभिचारी भावों के योग से परिपुष्ट होकर रस रूप में अभिव्यक्त हो रहा है—

दूलह श्रीरघुनाथ बने दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं ।
गावहिं गीत सबै मिलि सुन्दरि बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं ।।

राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परिछाहीं ।
याते सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारति नाहीं ।।

विप्रलम्भ शृंगार—आचार्यों ने विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण-इन चार दशाओं का उल्लेख किया गया है।[1] इसी प्रकार विरह की दस दशायें बतलायी गयी हैं[2]—

अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, जड़ता, मूर्च्छा और मरण ।

रामचरितमानस के निम्नलिखित प्रसंग में विप्रलम्भ शृंगार का पूर्ण परिपाक हुआ है—

आनि काठ रचु चिता बनाई । मातु अनल पुनि देहि लगाई ।।

रामचरितमानस।सुन्दरकाण्ड १२।२

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा । स्वास जरइ छन माहिं सरीरा ।।
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी । जरैं न पाव देह बिरहागी ।।

रामचरितमानस।सुन्दरकाण्ड ३१।४

(२) वीर-रस—मानस में मेघनाद-हनुमान युद्ध, लंका दहन और लंकाकाण्ड में वर्णित युद्ध-प्रसग में वीर रस सजीव होकर उपस्थित हुआ है। रामचरितमानस में वीर रस के चारों प्रकार[3] युद्ध वीर रस, दान वीर रस, दया वीर रस और धर्म वीर रस व्यंजित हुए है।

युद्ध वीर रस—"बीर बिहीन मही मैं जानी"। इस उक्ति से उद्बुद्ध होकर वीर रस लक्ष्मण के निम्नलिखित कथन में व्यंजित हुआ है—

तोरउँ छत्रक दंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ ।
जौ न करउँ प्रभु पद सपथ, पुनि न धरउँ धनु हाथ ।।

यहाँ धनुष आलम्बन विभाव और जनक का व्यंग्य उद्दीपन विभाव है। आवेश में आकर लक्ष्मण ने जो बातें कही है, वे अनुभाव हैं। आवेग, औत्सुक्य, मति, धृति और गर्व आदि संचारी भाव है। इनसे स्थायी भाव परिपुष्ट होकर वीर रस की व्यंजना करता है।

---

1. स च पूर्वरागमानप्रवासकरुणात्मकश्चतुर्धा स्यात् । साहित्य दर्पण ३।१८७
2. अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुणकथनोद्वेग सप्रलापाश्च ।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरितिदशात्र कामदशाः ।। साहित्य दर्पण ३।१९०
3. स च दानधर्म युद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात् । सा० द० ३।२३४
स च वीरो दानवीरोधर्मवीरो युद्धवीरो दयावीरश्चेति चतुर्विधः ।
सा० द० ३।२३४ की व्याख्या

दानवीर रस—निम्नांकित उद्धरण में श्रीराम की दान वीरता के दर्शन होते हैं—

जोइ संपति सिव रावनहिं, दीन्ह दिए दसमाथ।
सोइ संपदा विभीषनहिं, सकुचि दीन्ह रघुनाथ।।

दयावीर रस—रावण द्वारा घायल जटायु को श्रीराम अपनी गोद में ले लेते हैं और साश्रुनयन होकर जटायु के प्रति करुणायुक्त हो जाते हैं। इस प्रसंग में श्रीराम दयावीर के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं—

राघौ गीध गोद करि लीन्हो।
नयन सरोज सनेह सलिल सुचि मनहुँ अरघ जल दीन्हो।।

धर्मवीर रस—श्रीराम के निम्नांकित कथन में धर्मवीर रस की अभिव्यंजना हुई है।

आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ बेगिहिं होइ रजाई।।

(३) करुण रस—महाकवि तुलसीदास ने रामचरितमानस के विभिन्न प्रसंगों मे करुण रस की निष्पत्ति की है। रामवनगमन के समय सुमन्त के घोड़ों तक को श्रीराम के वियोग से दुःखी दिखलाया गया है—

जो कह राम लखनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही।।
बाजि बिरह गति किमि कहि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती।।

श्रीराम के वियोग में जब पशुओं की ऐसी दशा है, तब उनके साथ रहने वाले परिजनों और स्वजनों-माता-पिता की व्यथा कितनी अधिक होगी, इसी तथ्य की व्यंजना प्रस्तुत प्रसंग में की गयी है।

लक्ष्मण के शक्ति लगने पर श्रीराम का विलाप करुण-रस का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। अपने लिए प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए तत्पर प्रिय बन्धु के विपन्न होने पर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का मर्यादा-भाव कुछ समय के लिए विस्मृत हो गया और वे कह उठे —

जौं जनतेउँ बन बन्धु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू।।
रामचरितमानस।लंकाकाण्ड ६१।३

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपति बँटावन बन्धु बाहु बिनु करौं भरोसो काको।।
गीतावली। लंकाकाण्ड ७

(४) रौद्र रस—रामचरितमानस में परशुराम के क्रोध मे रौद्र रस की अभिव्यंजना हुई है—

भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महि देवन्ह दीन्हीं।।
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परम बिलोक महीप कुमारा

मातु पितहि जनि सोच बस, करसि महीस किसोर।
गर्भन्ह के अर्भक दलन, परसु मोर अति घोर ॥

रामचरितमानस १।२७२

(५) भयानक रस—भयानक रस का उत्तम उदाहरण लंकादहन प्रसंग में मिलता है—

बालधी बिसाल बिकराल ज्वालजाल मानो,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधौं ब्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीर रस बीर तरवारि सी उघारी है ॥
तुलसी सुरेस चाप कैधौं दामिनी कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु सरि भारी है।
देखें जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
कानन उजार्‌यो अब नगर प्रजारी है ॥ कवितावली ४।५

(६) अद्‌भुत रस—कवितावली का निम्नांकित पद अद्‌भुत रस का उत्कृष्टतम उदाहरण है—

लीन्हो उखारि पहार बिसाल चल्यो तेहि काल बिलंब न लायो।
मारुतनन्दन मारुत को मन को खगराज को बेग लजायो ॥
तीखी तुरा तुलसी कहतो पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो ॥

कवितावली ६।५४

(७) हास्य रस—गोस्वामी जी के साहित्य में शिष्ट हास्य के दर्शन होते हैं। नारद-मोह-प्रसंग में भगवान् के वरदान के द्वारा नारद का मुख हरि-अर्थात् बन्दर का हो गया। शिवगण नारद के मर्कट वदन की प्रशंसा करते हुए व्यंग्य कर रहे हैं, किन्तु नारद इसे वास्तविक प्रशंसा मानकर प्रसन्न हो रहे हैं—

मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही ॥
जेहि दिसि नारद बैठे फूली। सो दिसि तेहि न बिलोकी भूली ॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हरगन मुसकाहीं ॥

रामचरितमानस १।३४।४—१।३५।१

कवितावली के निम्नांकित पद में तपस्वियों के कथन में शिष्ट हास्य की अभिव्यक्ति हुई है—

बिन्ध्य के बासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा, सुनि भे मुनि बृन्द सुखारे ॥

ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी, परसे पद मंजुल कंज तिहारे ।
कीन्ही भली रघुनायक जू, करुना करि कानन को पगु धारे ।।

कवितावली २।२८

रामचरितमानस की निम्नांकित चौपाई में शिष्ट हास्य के दर्शन होते हैं—

पुनि आउब इहि बिरियाँ काली । अस कहि मन बिहँसी एक आली ।।

(८) शान्त रस—शान्त रस का स्थायी भाव राम अर्थात् तत्त्वज्ञान या आत्म ज्ञान है। निम्नांकित पद में संसार की आसारता का उल्लेख करते हुए कवि ने संसार के प्रति निर्वेद का भाव व्यक्त किया है—

स्रग मँह सर्प विपुल भयदायक प्रगट होइ अविचारें ।
बहु आयुध धरि वल अनेक करि हारहि मरइ न मारे ।।

× × ×

तुलसिदास जग आपु सहित जब लगि निरमूल न जाई ।
तब लगि कोटि कलप उपाय करि मरिय तरिय नहिं भाई ।।

विनयपत्रिका १२२।३-५

(९) वीभत्स रस—कवितावली के लंका-दहन और राम-रावण-युद्ध के प्रसंग में वीभत्स रस की निष्पत्ति हुई है—

ओझरी की झोरी काँधे आँतनि की सेल्ही बाँधे,
मूँड़ के कमंडलु खपर किएँ कोरि के ।
श्रोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेत एक पिअत बहोरि घोरि घोरि कै ।। कवितावली ६।५०

(१०) वात्सल्य रस—वात्सल्य रस का स्थायी भाव पाल्य-पालक लक्षण से युक्त पुत्रादि विषयक स्नेह है—

रामचरितमानस के निम्नांकित प्रसंग में वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति हुई हैं—

ले उछंग कबहुँक हलरावे । कबहुँ पालने घालि झुलावे ।।

रामचरितमानस १।२००।४

इसी प्रकार गीतावली के निम्नलिखित पद में भी वात्सल्य रस की सुन्दर निष्पत्ति हुई है—

ललित सुतहिं लालति सचु पाये ।
कौसल्या कल कनक अजिर महँ सिखवति चलन अँगुरिया लाये ।।
किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि डरपति जननि पानि छुटकाये ।।

× × ×

बालबेलि अवलोकि मातु सब मुदित मगन आनंद न अमाये ।।

गीतावली १।३२।१-६

अलंकार-निरूपण

आखर अरथ अलंकृति नाना ।

अलम् + कृ + घञ् के योग से निष्पन्न अलंकार शब्द की व्याख्या दो प्रकार से की जाती है :—

(१) अलंकरोतीति अलंकारः, अर्थात् जो आभूषित करता है, वह अलंकार है।

(२) अलंक्रियतेऽनेनेत्यलंकारः, अर्थात् जिसके द्वारा कोई वस्तु विभूषित होती है; उसे अलंकार कहते है ।

अलंकार के स्वरूप पर प्रकाश डालने वाले विद्वानों के मत निम्नांकित हैं—

१—आचार्य भामह शब्दार्थ-वक्रता को अलंकार मानते हैं—

वक्राभिधेय—शब्दोक्तिरिष्टा वाचामलंकृतिः । काव्यालंकार १।३७

२—दंडी काव्य के शोभा विधायक धर्म को अलंकार मानते हैं—

काव्यशोभाकरान्धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते । काव्यादर्श २।१

३—वामन के विचार से काव्य-सौन्दर्य ही अलंकार है—

सौन्दर्यमलंकारः । काव्यालंकार सूत्र वृत्ति १।१।२

४—रुद्रट का मत है कि अभिधान के कथन का प्रकार विशेष अथवा कवि-प्रतिभा से प्रादुर्भूत कथन विशेष ही अलंकार है—

अभिधानप्रकार विशेषा एव चालंकाराः । हि० सा० कोश पृ० ६१ पर उद्धृत

५—कुन्तक के विचार से विदग्धों की कथनभंगी ही वक्रोक्ति है और वही अलंकार है—

वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगीभणितिरुच्यते । वक्रोक्ति-जीवित १।१०

६—विश्वनाथ का मत है कि शब्द और अर्थ के शोभातिशायी अर्थात् सौन्दर्य की विभूति को बढ़ाने वाले धर्म अलंकार हैं—

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः ।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत् ॥ सा० द० १०।१

७—महिम भट्ट के अनुसार चारुत्व और शब्दार्थ की विच्छित्ति को अलंकार कहते हैं—

चारुत्वमलंकारः सैषा च शब्दार्थयोर्विच्छित्तिरलंकारः । व्यक्ति-विवेक

८—अग्निपुराण में कहा गया है कि अलंकार विरहित वाणी विधवा स्त्री की भाँति होती है—

अर्थालंकार रहिता विधवेव सरस्वती ।

९—अलंकार शब्दार्थ से उसी प्रकार अनिवार्य रूप से सम्बन्धित होते हैं, जिस प्रकार उष्णता अग्नि से सम्बन्धित होती है—

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती ।।

१०—ध्वनिकार के मत से अंगों में आभूषणों की जो स्थिति होती है, वही स्थिति शब्दार्थ में अलंकारों की होती है—

अंगाश्रितास्त्वलंकारा मन्तव्या कटकादिवत् ।

अलंकार तीन प्रकार के होते हैं—

१. शब्दालंकार २. अर्थालंकार ३. उभयालंकार ।

(१) शब्दालंकार—जहाँ शाब्दिक चमत्कार प्रधान होता है, वहाँ शब्दालंकार होता है। अनुप्रास, यमक, पुनरुक्तवदाभास, चित्र, वक्रोक्ति, पुनरुक्ति प्रकाश, श्लेष और वीप्सा आदि अलंकार शब्दालंकार कहलाते हैं।

(२) अर्थालंकार—जहाँ काव्य में अर्थगत चमत्कार का प्राधान्य होता है, वहाँ अर्थालंकार होता है। उपमा, अनन्वय आदि अलंकार अर्थालंकार कहलाते हैं।

(३) उभयालंकार—जहाँ शब्दगत और अर्थगत दोनों ही कोटि के चमत्कार प्रधान होते हैं, वहाँ उभयालंकार माना जाता है। संसृष्टि और संकर उभयालंकार कहे जाते हैं।

तुलसी-साहित्य में अलंकार निरूपण

गोस्वामी तुलसीदास के काव्यों में शताधिक अलंकारों की शोभा दृष्टिगोचर होती है। प्रमाण के लिए उनके काव्यों में प्रयुक्त प्रमुख अलंकारों को उद्धृत किया जाता है।

रामचरितमानस में अलंकार

पर्यायोक्ति—सीताहरन तात जनि, कहेहु पिता सन जाइ ।
जौं मैं राम तौ कुल सहित, कहहि दसानन आइ ।।

विभावना—बिनु पद चलै सुनै बिनु काना । कर बिनु करम करै बिधि नाना ।।

व्याज निन्दा—धन्यकीस जो निज प्रभुकाजा ।
जहँ तहँ नाचहि परिहरि लाजा ।।

उत्प्रेक्षा—लता भवन तें प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ ।।

रूपकातिशयोक्ति—श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं ।
नेकु न संक सकुच मन माहीं ।।

अपह्नुति—रवि निज उदय ब्याज रघुराया । प्रभु प्रताप सब नृपन्हि दिखाया ।।

उल्लेख—देखहिं भूप महारनधीरा । मनहुँ बीर रस धरे सरीरा ।।
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी । मनहुँ भयानक मूरति भारी ।।

अतिशयोक्ति—एहि बिधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल ;
तदपि सँकोच समेत कबि, कहहिं सीय समतूल ॥

अप्रस्तुत प्रशंसा—कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा ।
सार भाग ससि कर हर लीन्हा ॥

तुल्ययोगिता—सिय कर सोच जनक पछितावा । रानिन्ह कर दारुन दुख दावा ॥
संभुचाप बड़ बोहितु पाई । चढ़े जाइ सब संग बनाई ॥

सहोक्ति—आकरष्यो सिय मन समेत हरि, हरष्यो जनक हियो ।
भंज्यो भृगुपति गर्व सहित तिहुँ, लोक बिमोह कियो ॥

व्याघात—बंदौ संत असज्जन चरना । दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥
मिलत एक दारुन दुख देहीं । बिछुरत एक प्रान हर लेहीं ॥

स्मरण—बीच बास करि जमुनहिं आए । निरखि नीर लोचन जल छाए ॥

परिसंख्या—दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज ।
जितहु मनहिं अस, सुनिअ जग रामचन्द्र के राज ॥

श्लेष—साधु चरित सुभ चरित कपासू । निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥
बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही । संतत सुरानीक हित जेही ॥

× × ×

रावन सिर सरोज बनचारी । चलि रघुबीर सिलीमुख धारी ॥

दीपक—संग ते जती कुमंत्र ते राजा । मान ते ग्यान पान तें लाजा ॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी । नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥

अधिक—बहुत उछाह भवन अति थोरा । मानहुँ उमगि चला चहुँ ओरा ।

काव्यार्थापत्ति—जितेहु सुरासुर तब स्रम नाहीं । नर बानर केहि लेखे माहीं ॥

समुच्चय—ग्रहग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार ।
ताहि पियाइअ बारुनी, कहहु कौन उपचार ॥

प्रत्यनीक—नहिं चितव जब करि कोप कपि, गहि दसन लातन्ह मारहीं ।
धरि केस नारि निकारि बाहेर, तेऽति दीन पुकारहीं ॥

स्वभावोक्ति—भोजन करत चपल चित, इत उत अवसरु पाइ ।
भाजि चलत किलकत मुख, दधि ओदन लपटाइ ॥

विनोक्ति—स्याम गौर किमि कहौं बखानी । गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥

अर्थान्तर न्यास—कारन ते कारज कठिन, होइ दोष नहिं मोर ।
कुलिस अस्थि ते उपल ते, लोह कराल कठोर ॥

कारण माला—बिनु सतसंग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गए बिनु राम पद, होइ न दृढ़ अनुराग ॥

माला दीपक—जगु जपु राम, राम जपु जेही ।

परिकर—देहु उतर अनु कहहु कि नाहीं । सत्य संध तुम्ह रघुकुल माहीं ।

दृष्टान्त—प्रभु अपने नीचहु आदरहीं । अगिनि धूम गिरि सिर तृन धरहीं ।।

उदाहरण—नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ।।

व्यतिरेक—संत हृदय नवनीत समाना । कहा कबिन पै कहइ न जाना ।।
निज परिताप द्रवै नवनीता । परदुख द्रवै संत सुपुनीता ।।

प्रतिवस्तूपमा—तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा । चोरहि चाँदिनि रात न भावा ।।

भ्रान्तिमान् अथवा भ्रमालंकार—कपि कर हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब ।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गह्यो ।।

गूढ़ोत्तर—कह दसकंठ कवन तैं बन्दर । मैं रघुबीर दूत दसकंधर ।।

परिवृत्ति—तारा बिकल देखि रघुराया । दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया ।।

लेश या अंश—जौं नहि होत मोह अति मोही । मिलतेउँ तात कवन बिधि तोहीं ।

सम—जस दूलह तस बनी बराता । कौतुक बिबिध होहिं मग जाता ।।

विषम—कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा । कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा ।।

सार—अधम ते अधम अधम अति नारी । तिन्ह महँ मैं अति मंद अघारी ।।

भाषासम—जहाँ एक ही प्रकार के शब्दों से अनेक भाषाओं में वही वाक्य रहे, वहाँ भाषासम होता है।[1] गोस्वामी जी ने ऐसे छन्द लिखे हैं, जहाँ हिन्दी और संस्कृत की शब्दावली का एक साथ प्रयोग किया गया है—

जय राम सदा सुख धाम हरे । रघुनायक सायक चाप धरे ।।
× × ×
गुन सील कृपा परमायतनं । प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं ।।

संदेह—की तुम्ह स्यामल गौर सरीरा । छत्री रूप फिरहु बन बीरा ।।
की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ । नर नारायण की तुम्ह दोऊ ।।

अन्योन्य—अबला बिलोकहिं पुरुष मय, जगु पुरुष सब अबलामयं ।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं ।।

काव्यलिंग—स्याम गौर किमि कहौं बखानी ।
गिरा अनयन नयन बिनु बानी ।।

यथासंख्य—मनि मानिक मुकुता छबि जैसी । अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी ।।

विकल्प—जन्म कोटि लगि रगर हमारी । बरौं संभु न तो रहौं कुआँरी ।।

उल्लास—जहाँ एक वस्तु के गुण अथवा दोष का दूसरी वस्तु के गुण अथवा दोष पर प्रभाव पड़े, वहाँ उल्लास अलङ्कार होता है।[2]

---

१. शब्दैरेकविधैरेव भाषासु विविधास्वपि ।
वाक्यं यत्र भवेत्सोऽयं भाषासम इतीष्यते ।। सा० द० १०।१०

२. एकस्य गुण दोषाभ्यामुल्लासोऽन्यस्य । कुवलयानन्द १३३

सठ सुधरहिं सत संगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई।

अवज्ञा—बायस पालिअ अति अनुरागा। कबहुँ निरामिष होहिं कि कागा॥

विपरीत—विनय न मानत जलधि जड़, गए तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति॥

विनयपत्रिका में अलंकार

कवि ने विनय पत्रिका में अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है—

विशेषोक्ति—महामोह-सरिता अपार महँ संतत फिरत बह्यो।
श्री हरि चरन कमल नौका तजि, फिर-फिर फेन गह्यो॥

उदाहरण—अस्थि पुरातन छुधित स्वान अति ज्यों भरि मुख पकरै।

अन्योन्य—काहे ते हरि मोहिं बिसार्यो।
जानत निज महिमा मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभार्यो॥

सांग रूपक—देखो देखो बन बन्यो आजु उमाकंत,
मानो देखन तुम्हहिं आई रितु बसंत।
जनु तनदुति चंपक कुसुम माल,
बर बसन नील नूतन तमाल॥

परम्परित रूपक—

(१) भूमिजा-रमण पदकंज-मकरंद रस रसिक मधुकर।

(२) पुष्पकाण्ड-सौमित्रि-सीता सहित भानुकुल भानु कीरति पताका॥

परिकरांकुर—विश्वंभर, श्रीपति, त्रिभुवनपति, बेद बिदित यह लीख।
बलि सों कछु न चली प्रभुता बरु ह्वै द्विज मांगी भीख।

विभावना—मारेउ त्रिपुर एक ही बान।

विनोक्ति—बिनु तव कृपा दयालु! दास हित! मोह न छूटै माया।

काव्यलिंग—जो जेहि कला कुसल ता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जलप्रवाह सुरसरी बहै गज भारी॥

दृष्टान्त—ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ, बल तें न कोउ बिलगावै।
अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै॥

अनन्वय—दई पीठ बिनु डीठ मैं, तुम बिस्व बिलोचन।
तो सों तुही न दूसरो, नत सोच बिमोचन॥

तुल्ययोगिता—जापर सानुकूल गिरिजा हर, लखन राम अरु जानकी।
तुलसी कपि की कृपा बिलोकनि, खानि सकल कल्यान की॥

निदर्शना—

ते नर नरक रूप जीवत जग, भव भंजन पद बिमुख अभागी।
निसि बासर रुचि पाप असुचि मन, खल मति मलिन निगम पथ त्यागी॥

सहोक्ति—प्रेम प्रसंसा विनय ब्यंग जुत सुनि विधि की बर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन जगत मातु मुसकानी॥

अर्थान्तर न्यास—उपकारी को पर हर समान।
सुर असुर जरत कृत गरल पान॥

विरोधाभास—
सारथि पंगु दिब्य रथ गामी। हरि संकर विधि मूरति स्वामी॥

मानवीकरण—
सीदत साधु साधुता सोचति खल विलसत हुलसति खलई है।

कवितावली में अलंकार

साङ्ग रूपक—तुलसी समिध-सौंज, लङ्क जग्यकुंड लखि,
जातुधान पुंगीफल, जव तिलधान हैं।
सु्वा सो लंगूल बलमूल प्रतिकूल हवि,
स्वाहा महा हाँकि हाँकि हनै-हनुमान हैं॥

संदेह—बालधी बिसाल विकराल ज्वाल जाल मानों,
लंक लीलिवे को काल रसना पसारी है।
कैधौं ब्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तर वारि सी उघारी है॥

विरोधाभास—आई पारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति,
आई मीचु मिटति जपति राम नाम को॥

असंगति—संग लिए बिधु बैनी वधू रति को जेहि रंचक रूप दियो है।
पाँयन तौ पनही न पयादेहि, क्यों चलिहै, सकुचाति हियो है॥

प्रतीप—
नारि सुकुमारि संग जाके अंग उबटि कै, बिधि बिरचे बरुथ विद्युत् छटनि के।
गोरे को बदन देखे सोनो न सलोनो लागे, साँवरे बिलोकि गर्व घटत घटनि के।

ललितोपमा—मारुत नन्दन मारुत को मन को खगराज को बेग लजायो।

गीतावली में अलंकार

उत्प्रेक्षा—सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रंगमगे सृंगनि।
मनहुँ आदि-अम्भोज विराजत सेवित सुर मुनि भृंगनि॥

रूपक—ऋतु पति आए भलो बन्यो बन समाज।
मानों भए हैं मदन महाराज आज॥
मानो प्रथम फाँगु मिस करि अनीति।
होरी मिस अरि पुर जारि प्रीति॥

सन्देह--मुनिसुत किधौं भूपबालक, किधौं ब्रह्म-जीव जग जाए।
रूप जलधि के रतन, सुछवि तिय लोचन ललित ललाए।।
किधौं रवि सुवन, मदन ऋतुपति, किधौं हरिहर वेष बनाए।
किधौं आपने सुकृत सुरतरु के सुफल रावरेहि पाए।।

स्मरण--भूषन बसन बिलोकत सिय के।
प्रेम बिबस मन, कंप पुलक तनु, नीरज नयन नीर भरे पिय के।
सकुचत कहत, सुमुझि उर उमगत, सील सनेह सुगुन गन तियके।।

यथासंख्य—भुजनि भुजग, सरोज नयननि, बदन बिधु जित्यो लरनि।
रहे कुहरनि, सलिल, नभ उपमा अपर दुरि डरनि।।

परिकरांकुर—अवलोकत सब लोग जनकपुर मनो बिधि बिबिध बिदेह करे री।

अप्रस्तुत प्रशंसा—जो हठि नाथ राखिहौ मोकहँ तौ संग प्रान पठावौंगी।

स्वभावोक्ति—कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति, कहि प्रिय बचन सवारे।
'उठहु तात! बलि मातु बदन पर, अनुज सखा सब द्वारे।।

असंगति—हृदय घाउ मेरे, पीर रघुबीरै।

छेकानुप्रास—दूलह राम सीय दुलही री।
घन दामिनि बर बरन, हरन मन, सुन्दरता नख सिखनि बही री।
ब्याह बिभूषनि बसन बिभूषित, सखि अवली लखि ठगि सी रही री।

बरवै रामायण में अलंकार

निश्चयालङ्कार—कहकु न है उजियरिया, निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागु, मोहि बिनु राम।।

व्यतिरेक—सिय मुख सरद कमल जिमि, किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह, निसि दिन यह बिगसाइ।।

मीलित—सिय तुव अंग रंग मिलि, अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावौं, चम्पक होत।।

उन्मीलित--चम्पक हरवा अङ्ग मिलि अधिक सुहाइ।
जानि परै सिय हियरें, जब कुम्हिलाइ।।

अतद्‌गुण—केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत।।

काव्य-गुण

कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा।

काव्य के सौन्दर्यवर्द्धक अनिवार्य तत्त्वों में काव्य-गुणों का महत्त्वपूर्ण स्थान

है।[1] काव्य-गुण शब्दार्थ रूप काव्य-शरीर के शौर्य, दाक्षिण्य आदि गुणों की भांति अनिवार्य धर्म कहे गये हैं।[2] नाट्यशास्त्र में काव्य के दस गुण बतलाये गये हैं।[3] वामन ने शब्द के दस और अर्थ के दस; इस प्रकार बीस काव्य-गुणों का उल्लेख किया है। भोज ने शब्द और अर्थ; दोनों के चौबीस-चौबीस गुण बतलाये हैं। इस प्रकार काव्य-गुणों की संख्या ४८ तक पहुँच गयी है। किन्तु प्रमुख रूप से ओज, प्रसाद और माधुर्य; इन तीन काव्य-गुणों को ही मान्यता प्राप्त हुई है।[4]

ओज गुण—ओज गुण में चित्त को स्फूर्ति से उत्तेजित करने की क्षमता होती है। ओज गुण की प्रतिष्ठा के लिए द्वित्व युक्त वर्णों, संयुक्त वर्णों, र का संयोग, ट ठ ड ढ वर्णों का प्रयोग, समासाधिक्य तथा कठोर वर्णों की प्रचुरता आवश्यक होती है।[5] ओज गुण की प्रकाशिका परुषावृत्ति है।[6]

रामचरितमानस के निम्नांकित छन्द में ओज गुण पाया जाता है—

भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे॥
मंदोदरी उरकंप कंपति, कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

रामचरितमानस ६।९१ के पूर्व का छन्द

प्रसाद गुण—सूखी लकड़ी में व्याप्त अग्नि की भांति प्रसाद गुण के रूप में सहृदय-हृदय की निर्मलता चित्त में व्याप्त हो जाती है। इस गुण की स्थिति सभी

१. काव्य शोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः। काव्यालंकार सूत्र ३।१।१
२. ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥ काव्यप्रकाश ८।६६
३. श्लेषः प्रसादः समता समाधिर्माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम्।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यास्य गुणा दशैते॥
नाट्य शास्त्र १६।९६
४. माधुर्यमोजोऽथ प्रसाद इति ते त्रिधा। साहित्य दर्पण ८।१
५. ओजश्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते॥
वीर बीभत्सरौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु।
वर्गस्याद्यतृतीयाभ्यां युक्तो वर्णों तदन्ति मौ॥
उपर्यधो द्वयोर्वा सरेफो ट ठ ड ढैः सह।
शकारश्च षकारश्च तस्य व्यञ्जकतां गताः॥
तथा समासो बहुलो घटनौद्धत्यशालिनी। साहित्यदर्पण ८।४-७
६. ओजः प्रकाशकैस्तु परुषा। काव्यप्रकाश-सूत्र-१०९

प्रकार की रचनाओं में होती है। प्रसाद गुण के अभिव्यंजक शब्दों के अर्थ श्रवणमात्र से ही व्यक्त हो जाते हैं।[१] इसमें कोमलावृत्ति होती है।[२]

रामचरितमानस की निम्नांकित चौपाइयों में प्रसाद गुण के दर्शन होते हैं—

> बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई॥
> फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई॥
>
> रामचरितमानस। किष्किन्धाकाण्ड १६।१

माधुर्य गुण—सहृदय-हृदय की द्रवीभूतता को माधुर्य (गुण) कहते हैं। इससे हृदय में आनन्द की अनुभूति होती है। यह माधुर्य गुण शृंगार, करुण और शान्त रस में अनुगत रहता है। ट, ठ, ड और ढ आदि कर्णकटु वर्णों को छोड़कर क से लेकर म तक के वर्ण अपने अपने वर्ग के अन्त्य वर्ण से मिलकर श्रुति मधुर ध्वनि की सृष्टि किया करते हैं।[३] इसमें उपनागरिका वृत्ति होती है।[४]

रामचरितमानस की माधुर्य गुण से युक्त निम्नांकित चौपाइयाँ काव्य के चरम सौन्दर्य का स्पर्श करती हैं—

> कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥
> मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥
> अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
> भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥
>
> रामचरितमानस १।२३०।१,२

शब्द-शक्ति

जिस शक्ति या व्यापार के माध्यम से शब्द के अर्थ का बोध होता है; उसे शब्द-शक्ति कहते हैं। यह तीन प्रकार की होती है; १. अभिधा २. लक्षणा

चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः॥
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च।
शब्दास्तद् व्यंजका अर्थबोधकाः श्रुतिमात्रतः॥ साहित्य दर्पण ८।७,८

कोमला परैः। काव्यप्रकाश। सूत्र ११०

चित्तद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते।
सम्भोगे करुणे विप्रलम्भे शान्तेऽधिकं क्रमात्॥
मूर्ध्नि वर्गान्त्यवर्णेन युक्ताष्टठडढान्विना।
रणौ लघू च तद्व्यक्तौ वर्णाः कारणतां गताः॥
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा मधुरा रचना तथा। साहित्य दर्पण ८।२-४

माधुर्यव्यंजकैर्वर्णैरुपनागरिकोच्यते। काव्यप्रकाश। सूत्र १०८

३. व्यंजना । इन शब्द-शक्तियों से क्रमशः वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ का बोध होता है ।[१]

अभिधा—शब्द की जिस शक्ति के द्वारा शब्द का साधारणतया प्रचलित मुख्य या संकेतित अर्थ समझा जाता है, उसे अभिधा शब्द-शक्ति कहते हैं ।[२] जो शब्द साक्षात् संकेत से अपने अर्थ को व्यक्त करता है; वह वाचक कहलाता है ।[३]

रामचरितमानस के निम्नाङ्कित दोहे में प्रथम बार प्रयुक्त जननी शब्द सम्बोधन में और दूसरी बार प्रयुक्त जननी शब्द जन्मदात्री के अर्थ में गृहीत हुआ है—

जननी तूँ जननी भई, विधि सन कछु न बसाइ ।

रामचरितमानस २।१६१

यह अर्थ अभिधा शब्द-शक्ति के द्वारा गृहीत हुआ है ।

लक्षणा—जहाँ मुख्यार्थ के बाधित होने पर उससे सम्बन्धित अन्य अर्थ प्राप्त होता हैं; जो रूढ़ि या वक्ता की विवक्षा के अनुसार होता है, उसे लक्षणा शब्द-शक्ति कहते हैं ।[४] लक्षणा शब्द-शक्ति द्वारा तीन आधार होते हैं—

१—मुख्यार्थ का बाधित होना,

२—मुख्यार्थ से सम्बन्धित दूसरा अर्थ प्राप्त होना,

३—इस प्राप्त अर्थ का रूढ़ि या प्रयोजन के आधार पर गृहीत होना ।

लक्षणा के दो भेद होते हैं—

१. रूढ़ि या रूढ़ा लक्षणा २. प्रयोजनवती लक्षणा ।

(१) रूढ़ि या रूढ़ा लक्षणा—जहाँ किसी शब्द के नियत या संकेतिक अर्थ को छोड़कर उससे भिन्न अर्थ (लक्ष्यार्थ) बहुत दिनों की रूढ़ि या परम्परा से नियत हो जाता है; वहाँ रूढ़ा लक्षणा होती है : निम्नाङ्कित चौपाई में अवधपुरी का तात्पर्य अयोध्यावासियों से है—

अवधपुरी प्रभु आवत जानी । भई सकल सोभा कै खानी ।।

रामचरितमानस ७।३।५

---

१. अर्थो वाच्यश्च लक्ष्यश्च व्यंग्यश्चेति त्रिधा मतः ।।
वाच्योऽर्थोऽभिधया बोध्यो लक्ष्यो लक्षणया मतः ।
व्यंग्यो व्यंजनया ताः स्युस्तिस्रः शब्दस्य शक्तयः ।। साहित्य दर्पण २।२,३

२. तत्र संकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा । साहित्य दर्पण २।१२

३. साक्षात्संकेतितं योऽर्थमभिधत्ते स वाचकः । काव्य प्रकाश २।२

४. मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययान्योऽर्थः प्रतीयते ।
रूढेः प्रयोजनाद्वासौ लक्षणा शक्तिरर्पिता ।। साहित्य दर्पण २।५

इसलिए यहाँ रूढ़ा लक्षणा है।

(२) **प्रयोजनवती लक्षणा**—मुख्यार्थ के बाधित होने पर जब किसी विशेष प्रयोजन या विशिष्ट लक्ष्य के लिए लक्षणा का प्रयोग करना पड़ता है; तब उसे प्रयोजनवती लक्षणा कहते हैं।

निम्नाङ्कित चौपाई में माता का अर्थ सुखदायिका और पिता का अर्थ रक्षक है—

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही ॥

रामचरितमानस २।७४।१

ये विशेष अर्थ लक्ष्मण के वन जाने के प्रयोजन को ध्यान में रखकर ग्रहण किये गये हैं। अतः यहाँ प्रयोजनवती लक्षणा है।

प्रयोजनवती लक्षणा के दो भेद होते हैं—

क. गौणी प्रयोजनवती लक्षणा

ख. शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा

(क) **गौणी प्रयोजनवती लक्षणा**—जहाँ मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ में सादृश्य का सम्बन्ध होता है, वहाँ गौणी प्रयोजनवती लक्षणा होती है।

निम्नाङ्कित प्रसंग में कोमलता और सुन्दरता आदि गुणों में साम्य होने के कारण ही चरणों को कमल मान लिया गया है। अतः यहाँ गौणी प्रयोजनवती लक्षणा है।[1]

चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे ॥

रामचरितमानस २।६२।३

(ख) **शुद्धा प्रयोजनावती**—जहाँ मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ में सादृश्य के अतिरिक्त कोई अन्य सम्बन्ध आधार और आधेय अथवा अंग और अंगी का होता है; वहाँ यह लक्षणा होती है।

कौसल्या के बचन सुनि, भरत सहित रनिवासु।

ब्याकुल बिलपत राजगृह, मानहु सोक निवासु ॥ रामचरितमानस २।१६५

यहाँ रनिवासु का अर्थ 'राजमहल में रहने वाली स्त्रियाँ' है। अतः आधार और आधेय का सम्बन्ध होने के कारण यहाँ शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा है।

व्यंजना—शब्द के जिस व्यापार से शब्द के मुख्य एवं लक्ष्य अर्थ से भिन्न अर्थ की प्रतीति होती है; उसे व्यंजना शब्द-शक्ति कहते हैं।[2]

---

१. रामचरितमानस : वाग्वैभव—डॉ० अम्बा प्रसाद सुमन, पृष्ठ ३१५

२. विरतास्वभिधाद्यासु ययार्थो बोध्यते परः।
सा वृत्तिर्व्यंजनानाम शब्दस्यार्थादिकस्य च ॥ साहित्य दर्पण २।१२

राममातु भलि सब पहिचाने । रामचरितमानस।२।३३।४

यहाँ व्यंजना यह है कि कैकेयी के लिए दशरथ, राम और कौशल्या आदि सब छली और कपटी हैं; उसे उनका विश्वास नहीं है।[1]

व्यंजना के दो भेद होते हैं—

१. शाब्दी व्यंजना   २. आर्थी व्यंजना।

(१) शाब्दी व्यंजना—जहाँ व्यंग्यार्थ किसी विशेष शब्द के प्रयोग पर ही निर्भर रहता है; वहाँ शाब्दी व्यंजना होती है। प्रयुक्त शब्द को बदल देने पर शाब्दी व्यंजना नहीं रह जाती। शाब्दी व्यंजना केवल अनेकार्थक शब्दों में ही निहित रहती है।

शाब्दी व्यंजना के दो भेद होते हैं[2]—

(क) अभिधामूला शाब्दी व्यंजना

(ख) लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना

क. अभिधामूल शाब्दी व्यंजना—अभिधामूला शाब्दी व्यंजना वहाँ होती है, जहाँ वाच्यार्थ से एकबारगी व्यंग्यार्थ पर पहुँचते हैं। अभिधामूला शाब्दी व्यंजना द्वारा विभिन्नार्थक शब्दों का प्राकरणिक अर्थ निश्चित किया जाता है।[3] यह प्राकरणिक अर्थ संयोगादि अभिधानियामकों से प्राप्त होता है।[4] उदाहरणार्थ,

कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।

रामचरितमानस।सुन्दरकाण्ड।३।छन्द ?

यहाँ माल के अनेक अर्थों—माला, सामान, धन, भोज्य पदार्थों और मल्ल—में से लिङ्ग के आधार पर मल्ल अर्थ ग्राह्य है।[5]

अभिधामूला शाब्दी व्यंजना के अर्थ-निर्णायक हेतुओं में से प्रमुख हेतु और उनके उदाहरण निम्नाङ्कित हैं—

---

१. रामचरितमानस : वाग्वैभव—डॉ० अम्बा प्रसाद सुमन-पृष्ठ ३२०
२. अभिधालक्षणामूला शब्दस्य व्यंजना द्विधा। साहित्य दर्पण-२।१३
३. अनेकार्थस्य शब्दस्य संयोगाद्यैर्नियन्त्रिते।
एकत्रार्थेऽन्यधीहेतुर्व्यंजना साऽभिधाश्रया॥ साहित्य दर्पण २।१४
४. संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिंग शब्दस्यान्यस्य संनिधिः॥
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥ वाक्यपदीय
५. रामचरितमानस : वाग्वैभव—डॉ० अम्बा प्रसाद सुमन-पृष्ठ ३२१

(१) संयोग—

सोइ राम कामारि-प्रिय अवधपति सर्वदा दास तुलसी त्रास निधि वहित्रं ।

विनयपत्रिका ५०।६

यहाँ अवधपति के संयोग के कारण राम का अर्थ रामचन्द्र है।

(२) वियोग—अति अनन्य गति इन्द्रीजीता ।

जाको हरि बिनु कतहुँ न चीता ॥ वैराग्य संदीपिनी।२४

यहाँ इन्द्रियजित सन्तों के चित्त से वियोग का उल्लेख होने के कारण हरि का अर्थ विष्णु है।

(३) साहचर्य—हरिहि हरिता बिधिहि बिधिता सिवहि सिवता जो दई।

विनय०।१३५

यहाँ ब्रह्मा और शिव के साहचर्य से हरि का अर्थ विष्णु है।

(४) विरोध—कपिहि भूप बिलोकत जाकें ।

जिमि गज हरि किसोर के ताकें ॥

रामचरितमानस १।२६३।२

यहाँ गज के विरोध के कारण हरि का अर्थ सिंह है।

(५) अर्थ—द्विज देव गुरु हरि संत बिनु संसार पार न पाइऐ। विनय०।१३६

यहाँ द्विज के अनेक अर्थों में से उसका ब्राह्मण अर्थ लिया जायेगा।

(६) व्यक्ति—बालधी बढ़न लागी ठौर ठौर दीन्ही आग

बिंध की दवारि कैधौं कोटि सत सूर हैं। कवितावली ५।३

जलाने का काम सूर्य से ही सम्भव है, सूर (अंध व्यक्ति) से नहीं। अतः यहाँ सूर का सूर्य अर्थ ग्रहण किया जायेगा।

(७) अन्य सन्निधि—कीजे जो कोटि उपाय त्रिविध ताप

न जाय कह्यो जो भुज उठाइ मुनिवर कीर।

विनयपत्रिका।१९९

यहाँ 'मुनिवर' शब्द की सन्निधि के कारण कीर शुक का वाचक है।

(८) सामर्थ्य—तनु महँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं।

रामचरितमानस ६।६६।२

शरीर में प्रविष्ट होने का सामर्थ्य बाण में होता है, तालाब में नहीं। अतः सामर्थ्य के अनुसार यहाँ सर का अर्थ बाण लिया जायेगा।

(९) औचित्य—सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।

राम० १।२७४

समरभूमि में शूरवीर का ही प्रसंग होता है; अंधे व्यक्ति या सूर्य का नहीं। औचित्य के आधार पर यहाँ सूर का अर्थ शूर होगा।

(१०) देश—चार पदारथ में गनें, नरक द्वार हू काम । दोहावली।३५६

यहाँ नरक देश के सम्बन्ध के कारण काम शब्द का कामविकार अर्थ लिया जायेगा ।

(११) काल—बक राजि बाजत गगन हरिधनु, तोड़त दिसि दिसि सोहहीं ।

गीतावली ७।१६

वर्षा ऋतु के प्रसंग में काल के आधार पर यहाँ हरिधनु का अर्थ इन्द्रधनुष लिया जायेगा ।

(१२) लिंग—सरद बर तीरहिं तीर फिरें, रघुबीर सखा अरु बीर सबै ।

कवितावली १।७

वीर शब्द के अनेक अर्थों—सखी, भाई आदि में से यहाँ पुल्लिंग में प्रयुक्त वीर शब्द का अर्थ भाई होगा ।

ख. लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना—जिस व्यंजना में व्यंग्यार्थ पर लक्ष्यार्थ के उपरान्त पहुँचते हैं; उसे लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना कहते हैं ।[1]

तात तुम्हारि मातु बैदेही । रामचरितमानस २।७४।३

यहाँ मातु शब्द से स्नेहमयी रक्षिका का अर्थ ग्रहण किया गया है । अतएव यहाँ लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना है ।

(२) आर्थी व्यंजना—आर्थी (अर्थ सम्भवा) व्यंजना वह है, जो वक्तृ-वैशिष्ट्य एवं बोद्धव्यवैशिष्ट आदि कारणों से किसी अन्य अर्थ का ही बोध कराती है ।[2] इसमें प्रयुक्त शब्द के स्थान पर अन्य पर्यायवाची शब्द रख देने पर भी व्यञ्जना बनी रहती है ।

तुलसी-साहित्य में आर्थी व्यञ्जना के निम्नाङ्कित रूप उपलब्ध होते हैं[3]—

(१) वक्तृवैशिष्ट्योत्पन्न वाच्यसम्भवा आर्थी व्यंजना—यह व्यञ्जना कवि अथवा कवि निबद्ध पात्र के कथन की विशेषता के कारण होती है । निम्नांकित चौपाई में कवि ने श्रीराम के प्रति सीता के उत्कृष्ट अनुराग की व्यञ्जना की है—

मनहीं मन मनाव अकुलानी । होहु प्रसन्न महेस भवानी ।।
करहु सफल आपनि सेवकाई । करि हितु हरहु चाप गरुआई ।।

रामचरितमानस १।२५७।३

---

१. लक्षणोपास्यते यस्य कृते तत्तु प्रयोजनम् ।
यया प्रत्याय्यते सा स्याद् व्यंजना लक्षणाश्रया ।। साहित्य दर्पण २।१५

२. वक्तृबोद्धव्य० वाक्यानामन्यसंनिधिवाच्ययोः ।
प्रस्तावदेशकालानां काकोश्चेष्टादिकस्य च ।। साहित्य दर्पण २।१६

३. रामचरितमानस : वाग्वैभव—डॉ० अम्बाप्रसाद सुमन, पृष्ठ ३२२-३२८

अतः यहाँ उपर्युक्त व्यञ्जना है।

(२) बोद्धव्य वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा आर्थी व्यंजना—जब श्रोता की विशेषता के द्वारा किसी उक्ति में व्यंग्यार्थ होता है; तब वहाँ यह व्यञ्जना होती है।

पूजिहि मनकामना तुम्हारी। रामचरितमानस १।२३६।४

यहाँ सीता जी की भावना के सन्दर्भ में उपर्युक्त कथन का अर्थ होगा कि तुम्हें अभीष्ट पति मिलेगा।'

(३) वाक्य वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य संभवा आर्थी व्यञ्जना—जहाँ सम्पूर्ण वाक्य की विशेषता से व्यंग्यार्थ प्रकट होता है; वहाँ यह व्यञ्जना होती है। इस व्यञ्जना के अनुसार निम्नाङ्कित दोहे का व्यंग्यार्थ यह निकलता है कि भगवान् विष्णु नारद को अपना रूप नहीं देंगे; क्योंकि ऐसा करने से नारद का हित नहीं होगा—

जेहि बिधि होइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार॥

रामचरितमानस १।१३२

(४) अन्य संनिधि वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा आर्थी व्यंजना—जहाँ श्रोता के पास उपस्थित व्यक्ति को वक्ता के कथन से संकेत प्राप्त हो जाता है, वहाँ यह व्यञ्जना होती है।

निम्नाङ्कित प्रसंग में अशोक वृक्ष को सुनाकर कहे गये सीता के वचनों को हनुमान ने भी सुना। उन्हें यह जानकारी प्राप्त हुई कि सीता जी श्रीराम के विरह में प्राणान्त करना ही चाहती हैं—

सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥
नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥

रामचरितमानस।सुन्दरकाण्ड १२।५,६

(५) वाच्य वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा आर्थी व्यंजना—किसी व्यक्ति की उक्ति के वाच्यार्थ की विशेषता के कारण जब व्यंग्यार्थ प्रकट होता है; तब यह व्यंजना होती है।

निम्नाङ्कित चौपाइयों में सीता जी के कथन से व्यंग्यार्थ निकलता है कि श्री राम से पृथक् रहने पर सीता जी की मृत्यु हो जायेगी—

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥

रामचरितमानस २।६५।४

(६) प्रस्ताव वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा आर्थी व्यंजना—प्रस्ताव (प्रकरण) की दृष्टि से वक्ता के कथन से जब व्यंग्यार्थ का बोध होता है; तब यह व्यंजना होती है।

कंत करष हरि सन परिहरहू । मोर कहा अति हित हियँ धरहू ।।

रामचरितमानस।सुन्दरकाण्ड ३६।३

इस प्रसंग में मन्दोदरी के कथन का व्यंग्यार्थ यह है कि श्रीराम रावण के विरोध करने पर लंका सहित उसका विनाश कर देंगे । अतः रावण को श्रीराम से मित्रता कर लेनी चाहिए ।

(७) देश वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा आर्थी व्यंजना—जिस उक्ति में स्थान की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ प्रकट होता है; उसमें यह व्यंजना होती है ।

भगवान् राम के निम्नाङ्कित कथन में देश (स्थान) की विशेषता के कारण श्रीराम का अपनी जन्मभूमि (अयोध्या) के प्रति प्रेम व्यंजित हो रहा है—

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि । उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ।।

रामचरितमानस ७।४।३

(८) कालवैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा आर्थी व्यंजना—जहाँ समय की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ का बोध होता है; वहाँ यह व्यंजना होती है ।

सकल सनेह सिथिल रघुबर कें। गए कोस दुइ दिनकर ढरकें ।।

रामचरितमानस २।२२६।१

यहाँ काल विशिष्ट के कारण वाच्यार्थ से व्यक्त व्यंजना यह है कि राम-प्रेम के कारण अयोध्यावासी यात्रा करने में असमर्थ हैं ।

(९) काकु वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा आर्थी व्यंजना--जहाँ वक्ता के गले से उत्पन्न काकु ध्वनि के कारण वाच्यार्थ की प्राप्ति होती है; वहाँ यह व्यंजना होती है--

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू । तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू ।।

रामचरितमानस २।६७।४

यहाँ सीता के कथन का व्यंग्यार्थ यह है कि यदि श्रीराम वन के योग्य हैं, तो मैं भी वन के योग्य हूँ ।

(१०) चेष्टा वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा आर्थी व्यंजना—जब हाव-भाव आदि से व्यंग्यार्थ का बोध होता है; तब यह व्यंजना होती है ।

पुनि आउब एहि बेरिआँ काली । अस कहि मन बिहसी एक आली ।।

रामचरितमानस १।२३४।६

यहाँ सखी के हँसने में व्यंग्य यह है कि वह श्रीराम के प्रति सीता जी की दर्शनोत्कण्ठा को समझ गयी है ।

ध्वनि

धुनि अवरे कबित गुन जाती । मीन मनोहर ते बहु भाँती ।।

आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में ध्वनि को काव्य की आत्मा बतलाया

है।[1] विश्वनाथ के मत से व्यंग्य के वाच्यातिशायी होने पर ध्वनि होती है।[2] मम्मट का मत है कि जहाँ वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक सुन्दर और चमत्कारयुक्त होता है, उस काव्य को ध्वनि नामक उत्तम काव्य कहते हैं।[3] आनन्दवर्धन का मत है कि जहाँ वाचक शब्द अपने अर्थ को गौण बनाकर दूसरे प्रकार के अर्थों को प्राधान्येन व्यक्त करते हैं; वहाँ ध्वनि होती है।[4] भर्तृहरि के मत से शब्द के संयोग और वियोग से जो स्फोट उत्पन्न होता है, उसे ध्वनि कहते हैं।[5] आलंकारिकों के मत से घण्टानाद के सदृश अनुरणन रूप शब्द से उत्पन्न व्यंग्य अर्थ ही ध्वनि है। उनके अनुसार प्रसिद्ध शब्द-व्यापारों से भिन्न व्यंजकत्व नामक शब्द-व्यापार को ही ध्वनि कहते हैं।

ध्वनि के दो भेद होते हैं[6]—

(१) लक्षणामूला ध्वनि (अविवक्षित वाच्य ध्वनि)
(२) अभिधामूला ध्वनि (विवक्षित वाच्य ध्वनि)

लक्षणामूला ध्वनि में लक्षणा की स्थिति सर्वथा अनिवार्य होती है; किन्तु अभिधामूला ध्वनि में इस प्रकार का नियम नहीं है। लक्षणा के अभाव में भी अभिधामूला ध्वनि होती है।

(१) लक्षणामूला ध्वनि (अविवक्षित वाच्य ध्वनि)—जिस ध्वनि में वाच्य विवक्षित नहीं होता, उसे लक्षणामूला (अविवक्षित वाच्य) ध्वनि कहते हैं।

---

१. काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व-
स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये ।
केचिद् वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयं
तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम् ॥ ध्वन्यालोक १।१

२. वाच्यातिशायिनि व्यंग्ये ध्वनिः । साहित्य दर्पण ४।१
वाच्यादधिकचमत्कारिणि व्यंग्यार्थे ध्वन्यतेऽस्मिन्निति
व्युत्पत्त्या ध्वनिर्नामोत्तमं काव्यम् । सा० द० ४।१ की वृत्ति

३. इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः । काव्य प्रकाश १।२

४. यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ।
ध्वन्यालोक १।१३

५. संयोगवियोगाभ्यां कारणैरुपजायते ।
सः स्फोटः शब्दजः शब्दो ध्वनिरित्युच्यते बुधैः । वाक्यपदीय

६. भेदौ ध्वनेरपि द्वावुदीरितौ लक्षणाभिधामूलौ ।
अविवक्षितवाच्योऽन्यो विवक्षितान्यपरवाच्यश्च ॥ सा० द० ४।२

इसके दो भेद होते हैं[१]—

क. अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि ख. अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि ।

क. अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि—जहाँ प्रयुक्त पद वाच्यार्थ के अनुपयुक्त होने से किसी अन्य अर्थ में संक्रमित हो जाते हैं, वहाँ अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि होती है ।[२] यह ध्वनि उपादान लक्षणा में रहती है ।

सीता हरन तात जनि, कहहु पिता सन जाइ ।
जौं मैं राम त कुल सहित, कहिहि दसानन आइ ।।

रामचरितमानस।अरण्यकाण्ड।३१

यहाँ राम का अर्थ पराक्रमी और राक्षस-विध्वंसक राम है । व्यंग्यार्थ यह है कि अब रावण का भी नाश होगा । व्यंग्यार्थ के अधिक चमत्कारपूर्ण होने के कारण यहाँ अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है ।

ख. अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि—इसमें वाच्यार्थ असंगत होने से सर्वथा तिरस्कृत हो जाता है; केवल व्यंग्यार्थ ही प्रधान रहता है ।[३] यह ध्वनि लक्षण-लक्षणा में रहती है ।

चाउ कृपा मूरति अनुकूला । बोलत बचन झरत जनु फूला ।।

रामचरितमानस १।२८०।२

यहाँ कृपा, अनुकूल और फूल शब्द अपने-अपने वाच्यार्थ को छोड़कर तद्विपरीत अर्थ का बोध कराते हैं । अतः यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है ।

(२) अभिधामूला ध्वनि (विवक्षित वाच्य ध्वनि)—इसमें वाच्यार्थ विवक्षित तो रहता है; किन्तु वह व्यंग्यनिष्ठ ही होता है; स्वनिष्ठ नहीं ।[४]

इसके दो भेद होते हैं[५]—

क. असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि ख. संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि ।

---

१. अर्थान्तरं संक्रमिते वाच्येऽत्यन्तं तिरस्कृते ।
अविवक्षितवाच्योऽपि ध्वनिर्द्वैविध्यमृच्छति ।। सा० द० ४।३

२. यत्र स्वयमनुपयुज्यमानो मुख्योऽर्थः स्वविशेषरूपेऽर्थान्तरे
परिणमति, तत्र मुख्यार्थस्य स्वविशेषरूपार्थान्तर
संक्रमितत्वादर्थान्तर संक्रमित वाच्यत्वम् । साहित्य दर्पण ४।३ की विवृति

३. यत्र पुनः स्वार्थं सर्वथा परित्यजन्नर्थान्तरे परिणमति,
तत्र मुख्यार्थस्यात्यन्ततिरस्कृतत्वादत्यन्ततिरस्कृत वाच्यत्वम् ।
साहित्य दर्पण ४।३ की विवृति

४. विवक्षितं चान्यपरं वाच्यं यत्रापरस्तु सः । काव्य प्रकाश ४।२४

५. कोऽप्यलक्ष्यक्रमव्यंग्यो लक्ष्यव्यंग्यक्रमः परः । काव्य प्रकाश ४।२५

क. असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि—जब वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ का पौर्वापर्य क्रम प्रतीत नहीं होता, तब असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि होती है। इस ध्वनि के रस, रसाभास आदि आठ भेद होते हैं[1]—

रस ध्वनि—जहाँ रस व्यंग्य हो, वहाँ रस ध्वनि होती है।

पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ॥

रामचरितमानस २।५९।३

सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्र लिखित कपि देखि डेराती॥

रामचरितमानस २।६०।२

यहाँ वाच्यार्थ के साथ ही व्यंग्यार्थ रूप रस का प्रभाव प्रकट है। आलम्बन सीता की सुकुमारता, भीरुता आदि उद्दीपन और प्रिय के अनिष्ट के कारण शोक स्थायी भाव तथा करुण रस है।

इसी प्रकार निम्नांकित चौपाइयों में सीता जी के प्रणय-भाव की व्यंजना की गयी है—

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि॥

रामचरितमानस २।११७।३,४

यहाँ शृंगार रस व्यंग्य है। मुख को घूँघट से आच्छादित करना तथा प्रिय को तिरछी निगाहों से देखना उद्दीपन विभाव हैं। इन विभावों का बोध शृंगार रस की अनुभूति के साथ-साथ होता है। अतः यहाँ असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि है।

भाव ध्वनि—जहाँ अपुष्ट स्थायी भाव अथवा संचारी भाव का प्रकाशन होता है; वहाँ भाव ध्वनि होती है।[2]

कर कुठार मैं अकरुन कोही। आगें अपराधी गुरुद्रोही॥
उतर देत छोड़उँ बिनु मारें। केवल कौसिक सील तुम्हारें॥

रामचरितमानस १।२७५।३,४

यहाँ विश्वामित्र के शील के कारण क्रोध स्थायी भाव उद्बुद्ध होकर रह गया है, रस का पूर्ण परिपाक नहीं हुआ है। अतः यहाँ भाव ध्वनि है।

ख. संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि—इसमें वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ की प्रतीति का क्रम स्पष्ट प्रतीत होता है। इसे अनुरणनमूला ध्वनि भी कहते हैं; क्योंकि जिस

---

१. काव्य प्रकाश ४।२६

२. रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः।
भावः प्रोक्तः.................................. । काव्य प्रकाश ४।३५,३६

प्रकार घंटे पर चोट करने से टंकार के बाद सूक्ष्म ध्वनि सुनायी पड़ती है; उसी प्रकार इस ध्वनि में वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ भी स्पष्ट प्रतीत होता है। यह ध्वनि शब्द, अर्थ और उभय की व्यंजना से प्रादुर्भूत होने के कारण तीन प्रकार की होती है। इस ध्वनि में अलंकार-ध्वनि और वस्तु-ध्वनि की प्रधानता होती है।[1] यहां वाच्य की अपेक्षा व्यञ्जित अलंकार अथवा व्यञ्जित वस्तु अधिक चमत्कारक होती है।

अलंकार ध्वनि—शब्द और अर्थ को कविता का शरीर माना गया है। इन्हें अलंकार्य भी कह सकते हैं। अलंकार्य को अलंकृत करने वाले साधनों को अलंकार कहते हैं।

निम्नाङ्कित उदाहरण में सीता जी का रूप अलंकार्य है और उपमान-विधान अलंकार है—

सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई॥

रामचरितमानस १।२३०।४

वस्तु ध्वनि—जहां किसी घटना या वस्तु आदि की व्यंजना की जाती है, वहां वस्तु-ध्वनि मानी जाती है।

मोरें जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

रामचरितमानस ७।१।८

यहां शुभ शकुन होना वस्तु है। इसके द्वारा प्रतीक्षारत भरत की दशा ध्वनित हो रही है। अतः यहां वस्तु-ध्वनि है।[2]

चरित्र-चित्रण

रामचरितमानस के पात्र तीन प्रकार के हैं—

(१) आदर्श पात्र—श्रीराम, भरत आदि

(२) नीच पात्र—रावण, सूर्पणखा आदि

(३) सामान्य पात्र—दशरथ आदि

हम यहां प्रमुख पात्रों के चरित्र का संक्षेप में विश्लेषण करेंगे—

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम—श्रीराम के आदर्श चरित्र में धीरोदात्त नायक के सभी गुण पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त उनमें दया, उदारता आदि गुणों का प्राचुर्य दृष्टिगोचर होता है—

दया—अरिहु कर अनभल कीन्ह न रामा।

---

१. अलंकारोऽथ वस्त्वेव शब्दाद्यत्रावभासते। काव्यप्रकाश ४।२८

२. रामचरितमानस : वाग्वैभव—डॉ० अम्बाप्रसाद सुमन, पृष्ठ २८०

उदारता—जो संपति सिव रावनहिं, दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहिं, सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

कृपालुता—अति कोमल रघुबीर सुभाऊ।

शरण्यत्व—प्रनतपाल रघुनायक, करुना सिंधु खरारि।
गयें सरन प्रभु राखिहहिं, तव अपराध बिसारि॥
कोटि बिप्रबध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥

भक्तवत्सलता—मोरें अधिक दास पर प्रीती।

× × ×

भगत बछल कृपालु रघुराई।

दीनवत्सलता—जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्री भगवाना।

पतित-पावनता—सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

वीरता—जहाँ सुबेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा॥

कहा जाता है कि सुबेल पर्वत पर काल का पहरा रहता था। अतः श्रीराम का निर्भय होकर उसी सुबेल गिरि को अपना सैन्य-निवेश निर्धारित करना उनकी महावीरता का सूचक है।

कवि ने रामचरितमानस आदि काव्यों में श्रीराम के शक्ति, शील और सौन्दर्य का इतनी सुन्दरता से प्रतिपादन किया है कि श्रीराम एक आदर्श मानव के प्रतीक बन गये हैं।

भरत के ससैन्य चित्रकूट आने पर लक्ष्मण क्रोध करते हैं, किन्तु श्रीराम को भरत के आचरण में कहीं भी षड्यंत्र के दर्शन नहीं होते। परन्तु वे अपने अनुगामी लक्ष्मण का हृदय भी नहीं दुःखित करना चाहते। इसलिए वे प्रिय बन्धु लक्ष्मण को समझाते हुए कहते हैं—

लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥
भरतहिं होइ न राजमदु, बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीर सिंधु बिनसाइ॥

श्रीराम ने अपने वनवास में कारणस्वरूपा कैकेयी के प्रति माता से भी अधिक पूज्य बुद्धि रखकर उनकी मानसिक पीड़ा को दूर किया—

मातें राम अधिक जननी तें, जननिहुँ गँस न रही।

श्रीराम के शील का प्रभाव साँप और बिच्छू जैसे हिंसक जन्तुओं पर भी दिखलाया गया है—

जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिष तामस तीछी॥
रामचरितमानस।अयोध्याकांड २०१।२४

लङ्का में शक्ति के प्रहार से अचेत लक्ष्मण के प्रति उनका शुद्ध भ्रातृ-प्रेम दृष्टि-गोचर होता है—

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपति बँटावन बंधु बाहु बिनु, करौं भरोसो काको ॥

वाल्मीकि के राम नर हैं। नर से उन्हें नारायणत्व की उपलब्धि हुई है। अध्यात्म रामायण के राम विष्णु के अवतार हैं। किन्तु गोस्वामी जी के श्रीराम परब्रह्म के अवतार तथा अखिल ब्रह्माण्डनायक महाविष्णु के साक्षात् विग्रह-स्वरूप हैं। गोस्वामी जी ने रामचरितमानस के श्रीराम में मर्यादा पुरुषोत्तमत्व के साथ ही वाल्मीकि रामायण में प्रतिपादित राम के नारायणत्व और अध्यात्म रामायण में—प्रतिपादित राम के विष्णुत्व का अपने प्रबन्ध-कौशल से अपूर्व समन्वय स्थापित किया है; जो उनकी मौलिक उद्भावना का द्योतक है। श्रीराम सुख और दुःख दोनों अवस्थाओं में गम्भीर बने रहते हैं। वे राज्याभिषेक की सूचना पाकर हर्षातिरेक से पुलकित नहीं हुए और वनवास की आज्ञा पाकर दुःखी नहीं हुए—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः।
मुखाम्बुज श्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु स मंजुलमंगलप्रदा ॥

रामचरितमानस। २। मंगलाचरण श्लोक २

श्रीराम के चरित्र पर आक्षेप—डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने 'तुलसीदास' नामक ग्रन्थ में मानस के आधार पर श्री राम के चरित्र पर निम्नाङ्कित आक्षेप किये हैं—

(१) शूर्पणखा का विरूपीकरण
(२) बालि का छल पूर्वक वध

अब हम इन आक्षेपों के औचित्य पर विचार करेंगे—

शूर्पणखा का विरूपीकरण—शूर्पणखा के निम्नाङ्कित अपराध थे—

(१) वह विधवा थी, किन्तु उसने श्रीराम के समक्ष इस तथ्य को छिपाया था—
तातें अब लगि रहउं कुमारी।

(२) वह तीनों लोकों में स्वच्छन्द विचरण करती हुई अनार्योचित आचरण करती थी—
देखेउं खोजि लोक तिहु माहीं।

(३) श्रीराम के द्वारा तिरस्कृत होने पर वह सीता का भक्षण करना चाहती थी—
रूप भयंकर प्रगटत भई।

(४) उसने श्रीराम और लक्ष्मण दोनों की ही पत्नी होना स्वीकार कर लिया था। इससे सिद्ध होता है कि उसमें आर्योचित भार्याभाव न होकर कामातुरता मात्र थी।

अध्यात्म रामायण में उसे काम से मोहित बतलाया गया है—

> भ्रातुराज्ञां पुरस्कृत्य संगच्छाशोऽद्यमाचिरम् ।
> इत्याह राक्षसी घोरा लक्ष्मणं काममोहिता ॥

इस प्रकार व्यभिचारिणी और आततायिनी शूर्पणखा का विरूपीकरण कथमपि अनुचित नहीं कहा जा सकता। मनुस्मृति में कहा गया है कि आततायी का वध करने से कोई दोष नहीं लगता है—

> गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
> आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥
> नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।
> प्रकाशं वाप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥

मनुस्मृति ८।३५०, ३५१

वाल्मीकि रामायण में कहा गया है कि आततायिनी स्त्री का वध करने से कोई पाप नहीं लगता है—

> आततायिनं हन्यादेव धर्मः सनातनः ।
> न हि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम ॥
> चातुर्वर्ण्य हितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना ।
> नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षण कारणात् ॥
> अधर्म्या जहि काकुत्स्थ धर्मो ह्यस्यां न विद्यते ॥

वाल्मीकि रामायण।बालकाण्ड २५।१८,१९

डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र के मत से पापाचारिणी शूर्पणखा की कामवासना में सहायक उसके सौन्दर्य मात्र का विच्छेद कर उसे जीवन-साधना के लिए छोड़ देना, उसके अपराध को देखते हुए बहुत ही अल्प दण्ड था।

(५) पुलस्त्यकुल में उत्पन्न होने के कारण शूर्पणखा ब्राह्मणी थी। ब्राह्मणी का क्षत्रिय से विवाह प्रातिलोम्य विवाह कहलाता है। उसके लिए यही दण्ड स्मृत्यनुमोदित है—

> सजातौ उत्तमो दण्ड आनुलोम्ये तु मध्यमः ।
> प्रातिलोम्ये वधः पुंसो नार्याः कर्णादि कर्त्तनम् ॥ याज्ञवल्क्य स्मृति

बालि-वध—श्रीराम के द्वारा छल पूर्वक बालि-वध का उल्लेख 'साहित्य दर्पण' में भी किया गया है—

> धीरोदात्तस्य रामस्य धीरोद्धतवत् छद्मना वालिवधः । सा० द० ७।१५

यहाँ प्रकृति-विपर्यय नामक दोष बतलाया गया है। यद्यपि संस्कृत काव्य शास्त्र में वाल्मीकि रामायण के नायक श्रीराम को लक्षित कर ही पूर्वोक्त दोष का उल्लेख किया गया है; किन्तु आधार-साम्य एवं घटना-साम्य के कारण यही बात रामचरितमानस के नायक श्रीराम पर भी लागू होती है।

वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण में बालिवध के औचित्य पर विचार किया गया है। वाल्मीकि रामायण के श्रीराम कहते हैं कि हे बालि ! अधर्मचारी बन्दर होने के कारण तुम मेरे द्वारा मारे गये—

तस्मात्त्वं निहतो युद्धे मया बाणेन वानर !
अयुध्यन्प्रतियुध्यन्वा यस्माच्छाखामृगो ह्यसि ।।

किन्तु बालि को छिपकर क्यों मारा ? इस प्रश्न का उत्तर दोनों ही रामायणों में नहीं दिया गया।

(१) डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र[1] का मत है कि जब बालि को तुरन्त मुक्ति प्रदान कर दी गयी, तब उसके साथ अन्याय हुआ, ऐसा मानना उचित नहीं है। श्रीराम बालि के शरीर को अचल बनाने को कहते हैं—

अचल करौं तनु राखहु प्राना ।

किन्तु बालि स्वयं ही मृत्यु की कामना करता है—

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं । अन्त राम कहि आवत नाहीं ।।
× × ×
मम लोचन गोचर सोइ आवा । बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा ।।
रामचरन दृढ़ प्रीतिकर, बालि कीन्ह तनु त्याग ।
सुमन माल जिमि कंठ ते, गिरत न जानइ नाग ।।

रामचरितमानस।किष्किंधाकांड १०

(२) बालि को सामने आकर मारने पर बालि के शरणागत होने की संभावना थी; किन्तु श्रीराम बालि को मारने की प्रतिज्ञा पहले ही कर चुके थे—

सुनु सुग्रीव मारिहउँ, बालिहिं एकहि बान ।
ब्रह्म रुद्र सरनागत, गयें न उबरिहि प्रान ।।

बालि श्रीराम को समदर्शी मानता था, इसलिए वह श्रीराम को देखते ही उनकी शरण में चला जाता—

कह बाली सुनु भीरु प्रिय, समदरसी रघुनाथ ।

किन्तु पूर्व प्रतिज्ञानुसार उसका वध करना भी आवश्यक था। इसीलिए तब ओट से बालि का वध किया गया है।

(३) डॉ० बलदेव मिश्र का मत है[1] कि यदि बालि और रावण का खुला युद्ध होता; तो अंगद और जाम्बवान् आदि सद्वीरों को बालि की सहायता उसी प्रकार अनिच्छया करनी पड़ती, जिस प्रकार द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह आदि ने दुर्योधन की सहायता की थी। देवांश से उत्पन्न सद्वीरों—

---

१. तुलसी-दर्शन, पृष्ठ १५५

कृपा तें सेवक भए (आत्मघात)। । दोहावली । १४३

की मृत्यु अभीष्ट न होने के कारण श्रीराम ने उस वीरवाटिका के कंटक स्वरूप बालि मात्र का उच्छेदन किया। यही कारण है कि श्री राम ने भक्त-कलाप के स्वरूप महान् अनुचित कर्म के परिहार के लिए अपेक्षाकृत अल्प दोषयुक्त कार्य (छिपकर वध करना) को उचित माना। मनु और वेदव्यास आदि धर्माचार्यों द्वारा उपदिष्ट धर्म के अनुसार पर-प्राण-रक्षार्थ असत्य-भाषण दोषहीन माना गया है। उसी प्रकार देवांश से उत्पन्न अनन्त वानरभालु[1] समुदाय के वधरूप अकार्य के परित्राण हेतु धर्मव्यापकत्व की दृष्टि से समाज धर्म की रक्षा के लिए—व्यक्तिगत धर्म का त्याग-छिपकर बालिवध करना किसी भी प्रकार से दोषयुक्त कार्य नहीं माना जा सकता।

भरत—रामचरितमानस में पूर्णरूप से निर्दोष पात्र भरत हैं। उनका राज्य त्याग तथा अपनी माता के अनुचित आचरण के लिए प्रायश्चित्तस्वरूप अंगीकृत विरक्त जीवन, मानव-जाति के इतिहास में एक अनूठा उदाहरण है।

कवि ने अयोध्याकाण्ड के उत्तरार्द्ध में उन्हें कथानायक का सा रूप दे दिया है। भरत का श्री राम के प्रति अलौकिक प्रेम बतलाया गया है—

भरत प्रेमु तेहि समय जस, तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु, अह मम मलिन जनेषु॥

रामचरितमानस।अयोध्या० । २२५

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरिहर को।

रामचरितमानस।अयोध्या० २४१।६

भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥

रामचरितमानस।अयोध्या० २८६।४

भरत मोक्ष की नहीं, अपितु राम-पद प्रेम की आकांक्षा करते हैं—

अरथ न धरम न कामरुचि, गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन॥

रामचरितमानस।अयोध्या० २०४

भरत का प्रेम एकपक्षीय होने के कारण बहुत उदात्त रूप में निखरा है—

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जलु पबि पाहन डारउ॥
चातकु रटनि घटें घटि जाई। बढ़ें प्रेम सब भाँति भलाई॥
कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद प्रेमु निबाहें॥

---

१. निज लोकहि बिरंचि गे; देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि महि, हरि पद सेवहु जाइ॥

रामचरितमानस । बालकाण्ड । १८७

गोस्वामी ने भरत और राम के चरित्र की तुलना इस प्रकार की है—

भरत अवधि सनेह ममता की। जद्यपि रामु सीवँ समता की॥
लखन राम सिय कानन बसहीं। भरत भवन बसि तप तनु कसहीं॥
दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥

श्रीराम भी भरत के महत्त्व को स्वीकार करते हैं—

तीनि काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें॥

रामचरितमानस।अयोध्या० २६३।२

भरत के द्वारा माता कैकेयी के प्रति कहे गये कटु वचनों के आधार पर भरत के निर्दोष चरित्र पर भी लांछन लगाया जाता है, किन्तु भरत के मत से विश्व का हित श्रीराम के हित में व्यक्त हुआ है। अतः श्रीराम के विरोधी को लोक हित का विरोधी मानने के कारण ही भरत ने अपने व्यक्तिगत संकुचित पारिवारिक धर्म का परित्याग करते हुए लोक धर्म का पालन कर आदर्श राम भक्त होने का प्रमाण प्रस्तुत किया, क्योंकि धर्म के स्वरूप की व्यापकता उसके लक्ष्य की व्यापकता के अनुसार मानी जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मत से जहाँ धर्म की पूर्ण शुद्ध और व्यापक भावना का तिरस्कार दिखलायी पड़ेगा वहाँ आदर्श पात्र के हृदय में भी रोष का आविर्भाव होना स्वाभाविक है। राम पूर्ण धर्मस्वरूप हैं, क्योंकि अखिल विश्व की स्थिति उन्हीं से है। धर्म का विरोध और राम का विरोध एक ही बात है। तुलसी के मत से जिसे राम प्रिय नहीं है, उसे धर्म भी प्रिय नहीं होगा। अतः उसका त्याग कर देना चाहिए।

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।

इसके अतिरिक्त काव्य की दृष्टि से भी देखा जाये, तो इस अमर्ष के द्वारा भरत के रामप्रेम की जो व्यंजना हुई है, वह अपना एक विशेष लक्ष्य रखती है। खण्ड काव्य के भीतर जहाँ धर्म पर क्रूर और निष्ठुर आघात सामने आता है, वहाँ श्रोता या पाठक का हृदय अन्यायी का उचित दंडविधान के रूप में ही सही देखने के लिए छटपटाता है। यदि कथावस्तु के भीतर उसे दंड देने वाला पात्र मिल जाता है, तो पाठक या श्रोता की भावना तुष्ट हो जाती है। इसके लिए भरत से बढ़कर उपयुक्त पात्र और कौन हो सकता था। अर्थात् यदि कहीं मूल या व्यापक लक्ष्य वाले धर्म की अवहेलना हो, तो उसके मार्मिक और प्रभावशाली विरोध के लिए किसी परिमित क्षेत्र के धर्म या मर्यादा का उल्लंघन असंगत नहीं। काव्य में तो प्रायः ऐसी अवहेलना से उत्पन्न क्षोभ की अबाध व्यंजना के लिए मर्यादा का उल्लंघन आवश्यक हो जाता है।

१. गोस्वामी तुलसीदास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—पृष्ठ ११४

इसलिए भरत के यशश्चन्द्र में आरोपित उपर्युक्त कलंक अयथार्थ सिद्ध होता है। भरत का चरित्र निष्कलंक चन्द्रमा के समान है—

नव बिधु बिमल तात जस तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ॥
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ॥

गोस्वामी जी ने भरत की सत्पूर्ण निष्ठा में अपनी साधना का आदर्श देखा है। श्रीराम तो उनके इष्टदेव ही थे। भरत श्रीराम के प्रेम को प्राप्त कराने में माध्यम थे। अतः भरत और कवि दोनों की भक्ति-भावना में बहुत अधिक साम्य है—

भरत—अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन ॥

तुलसीदास—हेतुरहित अनुराग राम पद, बढ़ै अनुदिन अधिकाई।
चहौं न सुगति सुमति संपति कछु, रिधि सिधि बिपुल बड़ाई ॥

दोनों के प्रेमादर्श में भी साम्य है—

भरत—चातकु रटनि घटें घटि जाई। बढ़ें प्रेम सब भाँति भलाई ॥

तुलसीदास—एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास ॥ दोहावली। २७७
जौं घन बरषै समय सिर, जौं भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि, तऊ तिहारी आस ॥ दो० २७८

यही कारण है कि कवि अपने जीवन के उद्धार के लिए भरत चरित्र को उत्तम साधन मानते हैं—

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि, हठि राम सनमुख करत को ॥
रामचरितमानस।अयोध्याकांड।३२६।छन्द

लक्ष्मण—हम लक्ष्मण के जीवन में आज्ञाकारिता का सर्वोत्तम दृष्टान्त पाते हैं। उन्होंने सीता की आज्ञा से राम की आज्ञा—

सीता केरि करेहु रखवारी।

का उल्लंघन किया और राम की आज्ञा से सीता को वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ा। इस प्रकार उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन सीता और राम की सेवा में उत्सर्ग कर दिया—

'गुर पितु मातु न जानउँ काहू।'
'मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबन्धु उर अन्तरजामी ॥'

यही कारण है कि नवोढ़ा ऊर्मिला का आकर्षण भी उन्हें कर्त्तव्य-पथ से विचलित न कर सका। उन्होंने अपने जीवन में केवल एक बार रामाज्ञा का उल्लंघन किया। वह भी तब उन्होंने ऐसा किया, जब उसके उल्लंघन में उन्होंने केवल अपना

सहित, किन्तु सम्पूर्ण अयोध्यावासियों का हित समझा। यह प्रसंग था श्रीराम से काल की वार्ता के मध्य आगत दुर्वासा की आज्ञा से श्रीराम के आदेश का उल्लंघन कर लक्ष्मण का उनके पास जाना।

लक्ष्मण को श्रीराम का अपमान कभी सहन नहीं हुआ। इसीलिए उन्होंने राजा जनक और परशुराम का भी अपमान किया। जनक ने श्रीराम की भगवत्ता की अवमानना कर—

वीर बिहीन मही मैं जानी।

कहा था, तो परशुराम ने—

नाहिं त छाँड़ि कहाउब रामा।

कहकर श्रीराम का अनादर किया था। लक्ष्मण ने अपने पिता को कटु वचन कहे थे, क्योंकि राजा दशरथ ने श्रीराम को वनवास की आज्ञा दी थी—

लखन कहे कछु वचन कठोरा।

लक्ष्मण साधु स्वभाव वाले भरत से भी युद्ध करने के लिए तैयार हो गये थे, क्योंकि भ्रमवश उन्होंने यह समझ लिया था कि भरत सेना लेकर श्रीराम से युद्ध करने आये हैं—

जौं जिय होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ बाजि गजाली॥

अतः लक्ष्मण ने भयंकर प्रण कर लिया—

सानुज भरत निपातउँ सेवा।

लक्ष्मण में कर्मवाद का प्राधान्य है। अतः वे दैववाद का विरोध करते हैं—

दैव दैव आलसी पुकारा।

किन्तु उनके द्वारा निषाद को दिया गया उपदेश जिसमें वे श्रीराम के परब्रह्मत्व और संसार की असारता का प्रतिपादन करते हैं, उनके उद्धत तथा क्रोधी स्वभाव को देखते हुए स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता।

दशरथ—दशरथ का चरित्र दुःख पर्यवसायी है। उनकी मृत्यु परिवार, राष्ट्र तथा समाज के लिए घातक सिद्ध हुई। उन्होंने अपने जीवन में सत्य के प्रति निष्ठा और श्रीराम के प्रति स्नेह, इन दोनों की रक्षा की। उन्होंने प्रथम की रक्षा श्रीराम को वनवास देकर और दूसरे की रक्षा अपने प्राणों की बलि देकर की—

राखेउ राउ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ प्रेम पनु लागी॥

तजे रामु जेहि बचनहि लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी॥

श्रीराम के प्रति दशरथ की यह आसक्ति अत्यन्त वृद्धावस्था में सन्तान-प्राप्ति के कारण थी। वाल्मीकि रामायण के अनुसार ६० हजार वर्ष की आयु व्यतीत होने पर श्रीराम का जन्म हुआ था।[१] इसके अतिरिक्त उनके जीवन में कुछ दोष भी थे। उनका जीवन एक स्त्रैण तथा भोग-विलासी नृपति के रूप में दृष्टिगोचर

१. षष्टिर्वर्ष सहस्राणि जातस्य मम कौशिक। वा० रा० १।२०।१०

होता है। वीर नृपति दशरथ कैकेयी के कोप-भवन-गमन को सुनते ही भयभीत हो जाते हैं—

सुरपति बसइ बाँह बल जाके। नरपति सकल रहहिं रुख ताकें॥
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई॥

इसीलिए अपने कुल के उत्सर्गमय आदर्श जीवन के प्रतिकूल वे प्रिया के कथन मात्र से अनुचित कर्म करने के लिए तैयार हो जाते हैं—

अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा॥
कहु केहि रंकहि करौं नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू॥
प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें। परिजन प्रजा सकल बस तोरें॥

यह दोष स्पष्टतः बहुविवाह प्रथा के फलस्वरूप था। श्रीराम ने एकपत्नीव्रत का परिपालन कर इस दोष का परिहार प्रस्तुत किया। मानस के दशरथ वाल्मीकि रामायण के दशरथ से कुछ बातों में भिन्न हैं। वाल्मीकि रामायण के दशरथ एकान्त में श्रीराम के पास जाकर भरतागमन से उत्पन्न सम्भावित बाधा का उल्लेख कर उनसे शीघ्र ही राज्याभिषेक कराने की बात कहते हैं।[1] कैकेयी द्वारा श्रीराम के वनगमन का वरदान माँगने पर दशरथ श्रीराम से (अध्यात्म रामायण और वाल्मीकि रामायण इन दोनों में ही) कहते हैं कि हे राम ! तुम मुझे कारागार में डालकर राज्याधिकार प्राप्त कर लो।[2]

तुलसी के दशरथ राम-वन-गमन के अवसर पर विधि विधान की अनिवार्यता का वर्णन करते हैं।

सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं। रामु चराचर नायक अहहीं॥
करउ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई॥
और करै अपराधु कोउ, और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति, को जग जानै जोगु॥

रामचरितमानस २।७७।३-२।७७

वाल्मीकि रामायण में वर्णित दोष का परिहार करते हुए तुलसी ने लिखा है कि दशरथ ने राज्य दरबार में मंत्रियों और गुरु की मंत्रणा के पश्चात् उनकी सहमति से श्रीराम का अभिषेक करने की इच्छा व्यक्त की—

जौं पाँचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हियँ रामहि टीका॥

रामचरितमानस २।५।२

---

१. विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः।
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम॥ वाल्मीकि रामायण। २।४।२५
२. अयोध्यायास्त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम्। वाल्मीकि रामायण। २।३४।२६
निगृह्य मां गृहाणेदं राज्यं पापं न तद्भवेत्। अध्यात्म रामायण। २।३।३६.

जग मंगल भल काजु बिचारा । बेगिअ नाथ न लाइअ बारा ।।

रामचरितमानस २।५।३

इस मंत्रणा के दूसरे ही दिन राज्याभिषेक का सुयोग होने के कारण इतनी शीघ्रता से न तो भरत ही बुलाये जा सकते थे और न अधीनस्थ राजा । अस्तु शुभ लग्न में राज्याभिषेक का कृत्य सम्पादित कर तदनन्तर विधिपूर्वक समारोह करने की इच्छा से ही राजा दशरथ इस कार्यक्रम के कार्यान्वयन में प्रवृत्त हुए । इस सम्बन्ध में डॉ० माता प्रसाद गुप्त का यह कथन है कि राजा समस्त कार्य व्यापार में एक पक्ष का समय व्यतीत कर देता है, किन्तु वह भरत को नहीं बुलाता[1]; यथार्थ नहीं है । डॉ० गुप्त के इस कथन का आधार मन्थरा का छलपूर्ण निम्नांकित कथन है —

भयउ पाखु दिन सजत समाजू । तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू ।।

रामचरितमानस २।१६।२

कैकेयी के हृदय में भेद-बुद्धि उपजाने के लिए ही मंथरा ने यह असत्य बात कही है । मन्थरा के अनुसार जब कैकेयी यह सुनेगी कि मुझसे छिपाकर पन्द्रह दिन से राज्याभिषेक की तैयारी चल रही है, तब वह अवश्य रुष्ट हो जायेगी । अन्त में हुआ भी ऐसा ही । मन्थरा ने कैकेयी को भड़काने के लिए कहा था—

कद्रूं बिनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हहि कौसिला देब ।

भरतु बंदिगृह सेइहहि, लखनु राम के नेब ।। रामचरितमानस २।१६

क्या कोई भी मानस मर्मज्ञ श्रीराम और भरत के पारस्परिक स्नेह पूर्ण व्यवहार को देखकर इसे सत्य मान सकता है ? यदि सचमुच १५ दिन से मंगल-साज सजता होता, तो कैकेयी तथा उसके गुप्तचर इस वृत्त से कैसे अनभिज्ञ बने रहते ? स्वयं मंथरा इस समाचार से १५ दिन तक कैसे अनभिज्ञ बनी रही ? निम्नांकित कथनों से यह सिद्ध होता है कि राज्याभिषेक का निर्णय एक दिन पहले ही हुआ था ।

'बेगि बिलंबु न करिअ नृप'

'बेगिअ नाथ न लाइअ बारा ।

'राम करहु संजम सब आजू ।'

'रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू ।'

'राम तिलकु जों साँचेहु काली ।'

जो मंथरा नगर की साज-सज्जा देखते ही—

दीख मंथरा नगरु बनावा ।

तुरन्त कैकेयी के पास पहुँच जाती है, वह १५ दिन तक कैसे शान्त बनी रह सकती थी ?

इस प्रसंग में यह अवश्य विचारणीय है कि सुमित्रा तथा कौशल्या को राज्याभिषेक की सूचना शीघ्र मिल गयी ।

1. तुलसीदास— डॉ० माता प्रसाद गुप्त—पृष्ठ ३०१

सुमित्रा—चौकें चारु सुमित्रा पूरी ।

कौशल्या—आनन्द मगन राम महतारी ।

किन्तु कैकेयी को इसकी सूचना मन्थरा के अतिरिक्त किसी ने नहीं दी,

राम तिलक जौं साँचेहु काली । देउँ माँगु मन भावत आली ।।

किन्तु इससे कैकेयी के परिचारकों के हृदय में श्रीराम के राज्याभिषेक के सम्बन्ध में उदासीनता तथा उनके ईर्ष्या-द्वेष का ही पता चलता है । उसी दिन सायंकाल के समय स्वयं राजा दशरथ ने कैकेयी को यह सूचना दी—

साँझ समय सानंद नृपु, गयउ कैकेई गेहँ । रामचरितमानस २।२४

भामिनि भयउ तोर मन भावा । घर घर नगर अनंद बधावा ।।

रामहि देउँ कालि जुबराजू । सजहि सुलोचनि मंगल साजू ।।

अतएव डॉ० माता प्रसाद गुप्त का उपर्युक्त आरोप उचित नहीं प्रतीत होता ।

रावण

रामचरितमानस में रावण का चरित्र एक वस्तुवादी, अधार्मिक और नृशंस शासक का स्वरूप उपस्थित करता है । अहंकारियों ने रक्तदंड लेकर और धर्म का उच्छेद कर देवों को निर्बल बना देने की कामना करता है । उसे भक्त[1] कहना गोस्वामी जी की भावना का अतिक्रमण करना है । अपनी धर्मपत्नी की सम्मति की अवमानना करने वाले, दम्भी, हठी और क्रूर राक्षसेन्द्र रावण को राम के ईश्वरत्व[2] पर अन्त तक सन्देह बना रहा । श्रीराम के द्वारा खर दूषण के वध की सूचना मिलने पर उन्होंने विचार किया कि यदि श्रीराम भगवान् के अवतार होंगे, तो मैं उनसे युद्ध करते हुये प्राण त्याग कर मुक्त हो जाऊँगा । यदि वे कोई वीर राजकुमार होंगे, तो उन्हें युद्ध में जीतकर उनकी सुन्दर पत्नी का हरण कर लूँगा । इसके लिए उसने मारीच को कपटमृग बनाकर श्रीराम की भगवत्ता की परीक्षा लेने की योजना बनायी ।

खर दूषन मोहि सम बलवन्ता । तिन्हहि को मारइ बिनु भगवन्ता ।।

सुररंजन भंजन महि भारा । जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ।।

तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ । प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ ।।

रामचरितमानस।अरण्य।२३।१,२

उसकी परीक्षा के अनुसार श्रीराम कपट मृग का भेद न जान सके । अतः वे रावण की बुद्धि के अनुसार एक वीर राजा मात्र थे, ईश्वर नहीं । तब उसने दूसरे विकल्प के अनुसार श्रीराम की पत्नी का हरण कर लिया—

जौं नररूप भूपसुत कोऊ । हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ।

---

१. तुलसी की रामकथा—डॉ० भागवती सिंह—पृष्ठ २६६

२. गर्जेउ मरत घोर रव भारी । कहाँ रामु रन हतौं पचारी ।। रामचरित० ६।१०३।२

रावण की परीक्षा में श्रीराम भगवान् नहीं सिद्ध हुए थे। अस्तु जिन पात्रों—मन्दोदरी, हनुमान, विभीषण—ने उसे श्रीराम की ईश्वरता का ज्ञान कराना चाहा; उन सभी पात्रों की रावण ने कुत्सा की और उनका अपमान किया—

मन्दोदरी—अस विचारि सुनु प्रानपति, प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद, मम अहिवात न जाइ॥ मानस ६।१५
बिहँसा नारि बचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना॥
नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥ मानस ६।१६।१
हनुमान—मोह मूल बहु सूल प्रद, त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक, कृपासिन्धु भगवान॥ मानस ५।२३
मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही॥ मानस ५।२४।२
विभीषण—जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन॥
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई॥
रामचरितमानस ५।३९।४ एवं ५।४१।१

अमरत्व प्राप्त कर निखिल सद्‌वृत्त्युत्सेदन के निमित्त होने तथा बलि और हिंसा प्रधान होने के कारण उसके यज्ञों का श्रीराम के द्वारा विध्वंस किया गया। पंडित, तपस्वी, राजनीति-कुशल, धीर और महावीर होने पर भी उसने अपने सभी गुणों का दुरुपयोग किया। इसीलिए श्रीराम ने रावण का विनाश किया। मरने पर रावण का तेज श्रीराम के अनन्त तेज में समाहित हो गया—

तासु तेज समान प्रभु आनन। रामचरितमानस ६।१०३।५

विभीषण—रामचरितमानस में विभीषण एक आदर्श रामभक्त के रूप में वर्णित हुआ है। विद्वानों ने विभीषण के निम्नाङ्कित कार्यों की निन्दा की है—

(१) हनुमान को अशोक वाटिका का गुप्त मार्ग बतलाना।
(२) रावण द्वारा हनुमान को मृत्यु-दण्ड दिये जाने का विरोध करना—नीति बिरोध न मारिअ दूता।
(३) श्रीराम की प्रपन्नता स्वीकार करने के लिए रावण को बार-बार प्रेरित करना।
(४) रावण, कुम्भकरण और मेघनाद के गुप्त कार्यों का (निकुम्भला में मेघनाद के यज्ञ) का मर्म बतलाकर उनकी मृत्यु के रहस्य का उद्घाटन करना।

उपर्युक्त कार्यों के आधार पर विभीषण को स्वार्थी तथा देशद्रोही कहा जाता है। किन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने विभीषण पर लगाये गये आरोपों का उत्तर देते हुए कहा है कि विभीषण को भक्तों की श्रेणी में दाखिल करते समय गोस्वामी जी की दृष्टि कुलधर्म की संकुचित सीमा के भीतर बँधी न रहकर व्यापक लक्ष्य वाले धर्म की ओर थी। धर्म की उच्च और व्यापक भावना के अनुसार विभीषण को

भक्त का स्वरूप प्रदान किया गया है। रावण लोकपीड़क है। उसके अत्याचार से तीनों लोक व्याकुल हैं। उसके अनुयायी अकारण ही सज्जनों को उत्पीड़ित करते हैं और ऋषि मुनियों का वध करते हैं। सीताहरण के रूप में रावण का अधर्म पराकाष्ठा में पहुँचा दिखलायी पड़ता है। हनुमान से भेंट होने पर विभीषण की संकुचित और प्रसुप्त भक्तिभावना विकसित और प्रबुद्ध हो जाती है। रावण के द्वारा अपमानित होने पर—

> मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती॥
> अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा॥

विभीषण के समक्ष गृहधर्म की संकुचित सीमा से बाहर निकलकर व्यापक लोकधर्म के पालन की विस्तृत धर्मभूमि उपस्थित होती है। अस्तु वह लोक कल्याण विधायक धर्म का अवलम्बन लेकर धर्ममूर्ति भगवान् श्रीराम की शरण में जाता है।

उपसंहार

भक्ताग्रणी गोस्वामी तुलसीदास का काव्य भौतिक तापों से संतप्त जन-मानस को शीतलता प्रदान करता है। उनका महाकाव्य रामचरितमानस एक धर्मग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका है और घर-घर में पूजा जाता है। भारतवर्ष में ऐसा कोई घर नहीं होगा, जहाँ रामचरितमानस का गुटका न पाया जाता हो। गाँवों में लोग बात-बात पर रामचरितमानस की चौपाइयों का उद्धरण देते हैं। यह इस पावन काव्य की लोकप्रियता का प्रमाण है।

गोस्वामी जी मूलतः भक्त थे। अतएव उनकी भक्ति भावना का उनके दार्शनिक विचारों पर विशेष प्रभाव पड़ा है।

जिस समय गोस्वामी जी का जन्म हुआ था, उस समय यवन सम्राट् भारतीय धर्म और संस्कृति को नष्ट करने पर तुले हुए थे। मन्दिर तोड़े जाते थे, मूर्तियां तोड़ी जाती थीं और धर्मग्रन्थ फाड़े जाते थे। यह अत्याचार देखकर हिन्दू जनता निराश हो गयी थी। ऐसे संकट के अवसर पर गोस्वामी जी ने लोकरक्षक और लोकनायक श्रीराम का आदर्श चरित्र प्रस्तुत कर नष्टप्राय हिन्दू जनता में आशा का संचार किया। इस प्रकार उनका काव्य संजीवनी बनकर आया। इस दृष्टि से गोस्वामी जी का भारतीय जनता पर बहुत बड़ा ऋण है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के माध्यम से उनके सार्वजनीन विचारों और सिद्धान्तों का विश्लेषण कर मैंने उनके पावन चरणों में अपने श्रद्धा-कुसुम अर्पित किये हैं।

———